सरदार वल्लभभाई पटेल

राष्ट्रीय जीवनचरित

सरदार वल्लभभाई पटेल

विष्णु प्रभाकर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-0947-1

पहला संस्करण : 1976

सातवीं आवृत्ति : 2001 (शक 1923)

Sardar Vallabhbhai Patel (*Hindi*)

रु. **30.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,
ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

दो शब्द	*सात*
होनहार बिरवान	1
विरासत	5
वकील साहब	9
रामकृष्ण के विवेकानंद	14
बारडोली के सरदार	18
परिजनों के बीच	22
स्वाधीनता संग्राम के सेनानी	28
प्रसव वेदना	38
कड़वा घूंट	43
मुक्ति दिवस मुस्काया	47
विशाल भारत के निर्माता	50
हरि सम्हालना जी	57
अनुक्रमणिका	61

दो शब्द

सरदार वल्लभभाई पटेल के विराट कर्ममय जीवन को इन थोड़े से पृष्ठों में सीमित कर देना दुसाध्य कार्य था। सागर को गागर में भरना था। क्या छोड़ें, क्या लें। फिर भी इन पुस्तकों तथा फुटकर लेखों की सहायता से ऐसा करने का प्रयत्न किया गया है :

1. सरदार वल्लभभाई–दो भाग–नरहरि पारीख
2. हिंद के सरदार–रावजीभाई पटेल
3. सरदार वल्लभभाई पटेल–ईश्वरभाई पटेल
4. महादेवभाई की डायरी

तथा सर्वश्री प्रकाशवीर शास्त्री, वी. शंकर और भूतपूर्व राष्ट्रपति वराहगिरि वेंकट गिरि के फुटकर लेख।

लेखक इन सबका आभारी है।

–विष्णु प्रभाकर

आभार

संलग्न छायाचित्रों के प्रकाशन में सहयोग के लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं के आभारी हैं। पर्याप्त जानकारी के अभाव में जिनका नामोल्लेख नहीं हो सका उनके प्रति भी हम कृतज्ञ हैं।

प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
एसोसियेटेड प्रेस फोटोज, दिल्ली
गांधी स्मारक संग्रहालय, दिल्ली
नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नयी दिल्ली
पंजाब फोटो सर्विस, नयी दिल्ली
पत्र सूचना कार्यालय
पी. एन. वर्मा एंड कंपनी, इलाहाबाद
सर्वोदय दिवस समिति
सूचना निदेशालय, गुजरात सरकार

होनहार बिरवान

पहला दृश्य

अध्यापक परेशान है। बीजगणित का एक प्रश्न हल नहीं हो पा रहा। तभी कक्षा का एक किशोर उठता है और कहता है, ''आप यह सवाल हल नहीं कर सकते।''

अध्यापक सुनते हैं और चिढ़ उठते हैं, ''तो तुम कर दो न? तुम अध्यापक बन जाओ।''

किशोर तनिक भी नहीं झिझकता। उठता है। प्रश्न हल करता है और अध्यापक की कुर्सी पर बैठ जाता है।

बाप रे! ऐसी धृष्टता! अध्यापक क्रोध से कांप उठते हैं। शिकायत लेकर प्रधानाध्यापक के पास जाते हैं। प्रधानाध्यापक किशोर को बुलाकर पूछते हैं, ''तुमने ऐसा क्यों किया?''

किशोर सहज भाव से उत्तर देता है, ''क्योंकि उन्होंने कहा था।''

प्रधानाध्यापक सब कुछ समझ जाते हैं। फिर भी कहते हैं, ''न, न, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। फिर करोगे तो स्कूल से निकाल दिये जाओगे।''

किशोर एक बार प्रधानाध्यापक की ओर देखता है, कहता है, ''निकालने की जरूरत नहीं होगी। ऐसे स्कूल से मैं अभी चला जाता हूं।''

दूसरा दृश्य

विद्यार्थियों की एक टोली पढ़ने के लिए अपने गांव से 6-7 मील दूर एक दूसरे गांव जा रही थी। रोज जाती थी। उस दिन जाते-जाते अचानक उसे लगा कि एक विद्यार्थी कम है।

ढूंढ़ने पर पता लगा कि वह पीछे रह गया है। पुकारा, ''तुम वहां क्या कर रहे हो?''

उस विद्यार्थी ने वहीं से उतर दिया, ''ठहरो, अभी आता हूं।''

यह कहकर उसने धरती में गड़े एक खूंटे को पकड़ा, जोर से हिलाया, उखाड़ा और एक ओर फेंक दिया। फिर टोली में आ मिला। एक साथी ने पूछा, ''तुमने इस खूंटे को क्यों उखाड़ दिया। इसे तो किसी ने खेत की हद बताने के लिए गाड़ा था।''

उस विद्यार्थी ने कहा, ''लेकिन वह रास्ते के बीच में गड़ा हुआ था। चलने में रुकावट डालता था। जो रास्ते की रुकावट बने उस खूंटे को निकाल फेंकना ही चाहिए।''

तीसरा दृश्य

एक दिन अध्यापक महाशय क्लास में पढ़ाने नहीं आये। कार्यालय में बैठे गप्पें मारते रहे। विद्यार्थियों ने कुछ देर राह देखी फिर उन्होंने गाना शुरू कर दिया। आवाज कार्यालय तक जा पहुंची। अध्यापक दौड़े-दौड़े आये और लगे विद्यार्थियों को डांटने।

हमारे किशोर को यह अच्छा न लगा। बोला, ''आप हमें क्यों डांट रहे हैं? आप क्लास में आये नहीं। गप्पें मारते रहे। तब हम क्या करते? गाते नहीं तो क्या रोते?''

अध्यापक यह सुनकर और भी भड़क उठे। उन्होंने तुरंत उस किशोर को क्लास से निकल जाने की आज्ञा दी। किशोर उठा, पुस्तकें सम्हालीं, अपने साथियों की ओर देखा और बाहर चला गया। दूसरे क्षण अध्यापक ने अचरज से भरकर देखा कि क्लास के सभी विद्यार्थी बाहर चले गये हैं।

अगले दिन भी वे अंदर नहीं आये। अध्यापक परेशान थे। वे प्रधानाध्यापक के पास पहुंचे। उन्होंने विद्यार्थियों को बुलाकर कहा, ''अपने अध्यापक से माफी मांगो।''

उस किशोर ने उत्तर दिया, ''साहब, यह तो उल्टा चोर कोतवाल को डांटने की बात हुई। हमारा इसमें कोई दोष नहीं है। दोष मास्टर साहब का है। माफी किसी को मांगनी है तो, उन्हें।''

प्रधानाध्यापक चकित रह गये, पर थे समझदार। उन्होंने विद्यार्थियों से क्लास में जाने के लिए कहा। विद्यार्थी विजय-गर्व से मुस्कराते हुए क्लास में जा बैठे।

चौथा दृश्य

एक बार उस किशोर की बगल में एक जहरीला फोड़ा निकल आया। उस समय गांवों में चीर फाड़ करना कोई जानता नहीं था। बस उसे गरम लोहे से दाग दिया जाता था। वह किशोर भी अपना फोड़ा दगवाने के लिए नाई के पास गया। नाई ने लोहे की सलाख तपने के लिए आग पर रखी। वह किशोर उसे लाल होते देखता रहा। जरा

भी नहीं घबराया, लेकिन नाई झिझक गया। वह लाल सुर्ख सलाख उस किशोर के फोड़े में कैसे घुसेड़े। तभी वह किशोर कड़क उठता है, "देर क्यों करते हो? सलाख ठंडी हो रही है।"

नाई साहस करता है, एक बार में सारी पीप नहीं निकल पाती। नाई दुबारा घुमाते डरता है। किशोर उसी दृढ़ता से कहता है, "तुमसे नहीं होता तो मुझे दो।"

और वह दहकती सलाख अपने हाथ में ले लेता है। चारों तरफ घुमाता है। सारी पीप बाहर आ जाती है।

पांचवां दृश्य

वही किशोर एक दिन वकील बन गया। वकील साहब के हाथ में एक हत्या का संगीन मामला था। जरा-सी असावधानी हुई कि अभियुक्त फांसी पर। इसीलिए वह दत्तचित्त होकर बहस कर रहे थे। तभी उनके नाम एक तार आया। उन्होंने सहज भाव से तार लिया, पढ़ा और जेब में रख लिया। बहस उसी तरह चलती रही।

फिर अदालत का समय समाप्त हुआ। वह उठ गयी। किसी साथी ने हमारे वकील साहब से पूछ लिया, "वह तार कैसा था?"

वकील साहब ने जवाब दिया, "पत्नी की मृत्यु हो गयी है। उसी की सूचना थी।"

जिसने भी सुना पागल-सा देखता रह गया। एक मित्र ने साहस करके पूछा, "पत्नी की मृत्यु का समाचार पाकर भी तुम बहस करते रहे।"

वकील साहब बोले, "और क्या करता? वह तो चली गयी थी। अभियुक्त को भी चले जाने देता?"

तब वकील साहब की आयु कुल 30 वर्ष थी। उन्होंने फिर शादी नहीं की।

एक और दृश्य

जुलाई, 1927, तूफान-सा तूफान। सात दिन से पानी में डूबा अहमदाबाद उसके थपेड़े खा रहा है। म्यूनिसिपल कमेटी के अध्यक्ष का मन घबरा उठा है। हमारे वकील साहब ही तो अध्यक्ष हैं। वह रात के बारह बजे उसी तूफान में अकेले निकल पड़ते हैं। मार्ग में अपने जैसे एक साहसी मित्र को साथ लेते हैं। सवेरा होने तक सारा नगर घूम डालते हैं।

फिर पहुंचते हैं इंजीनियर के घर। उस तूफान में इन्हें देखकर वह चौंक उठता

है। उसे साथ लेकर वे फिर निकल पड़ते हैं।

चार दिन और चार रात। तूफान उसी तरह थपेड़े मारता रहता है और वे बिना रुके पानी के लिए राह बनाते रहते हैं। उनको देखकर मजदूर भी प्राणों की बाजी लगा देते हैं। अगर तब पानी न निकला होता तो अहमदाबाद की क्या दशा हुई होती कौन कह सकता है।

आप समझ तो गये ही हैं कि ये चित्र किसके जीवन के हैं? उस व्यक्ति को आज हम लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम से जानते हैं। आधुनिक भारत के निर्माताओं में वे पहली पंक्ति में हैं। एक समय तो यह 'सरदार' शब्द ही विद्रोह और विजय का प्रतीक बन गया था। क्योंकि उनका ध्येय वाक्य था–

शूर संग्राम को देख भागे नहीं,
देख भागे सो शूर नहीं।

गठा हुआ शरीर, लौह-रेखाओं से आच्छादित मुख, दृढ़ता के प्रतीक जबड़े, शत्रु को चुनौती और मित्र को अभय देती तेजस्वी आंखें, यह रूप था गर्वीले गुजरात के गर्वीले सरदार का। उन्होंने पौराणिक युग के उपमन्यु की तरह कर्तव्य पथ पर डटे रहना सीखा था और उनके लिए डटे रहने का अर्थ था विजय। वह ज्वालामुखी की तरह भस्म करने की शक्ति रखते थे परंतु उसका विस्फोट उनमें नहीं था। वह बहुत कम बोलते थे क्योंकि महात्मा लूथर के शब्दों में,"सच्चे सिपाही और सरदार कभी बढ़-चढ़कर बातें नहीं करते लेकिन जब बोलते हैं तो काम फतह ही समझिये।"

विरासत

ऐसे सरदार का जन्म भी उसी भूमि में हुआ था जो गीता के गायक वासुदेव कृष्ण की कर्मभूमि थी और जिसने महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती, राष्ट्रपिता महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी, प्रेजीडेंट विट्‌ठलभाई पटेल जैसे कर्मवीरों को जन्म दिया था। इसके चरोतर प्रदेश के मध्य में आणंद नाम का तालुका है। उसी में एक गांव है करमसद। इस गांव में अधिकतर पाटीदार बसते हैं। इन्हीं पाटीदारों के एक परिवार में वल्लभभाई पैदा हुए। उनके पिता का नाम था झवेरभाई पटेल। वे स्वामी नारायण संप्रदाय के अनुयायी थे। खेती भी करते थे और भक्ति भी। जितनी भक्ति भगवान के प्रति थी उतनी ही देश के प्रति भी थी।

सन् 1857 में जब पहली बार, संगठित रूप से भारत में विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह हुआ तो, कहते हैं झवेरभाई ने भी उसमें भाग लिया था। विद्रोहियों की मदद करने के लिए वे अपना गांव छोड़कर चले गये थे और अपना कार्य करते-करते इंदौर में गिरफ्तार हो गये थे। वहीं उन्हें रखा भी गया था। इंदौर-नरेश ने विद्रोह में भाग नहीं लिया था, लेकिन फिर भी विद्रोहियों के प्रति उनके मन में बड़ी सहानुभूति थी। झवेरभाई पर भी उन्होंने कोई सख्ती नहीं की।

ये इंदौर-नरेश शतरंज के बड़े अच्छे खिलाड़ी थे। एक दिन वे अपने किसी दरबारी के साथ खेल रहे थे। संयोग की बात, उस दिन उनका खेल जम नहीं रहा था। वे गलती पर गलती करते चले जा रहे थे और यह भी संयोग ही था कि कुछ दूर पर खड़े कैदी झवेरभाई उस खेल को देख रहे थे। अचानक उन्होंने देखा कि महाराज गलत चाल चलने वाले हैं, उनसे रहा नहीं गया। बड़े आदर के साथ बोले, ''राजा साहब, मोहरे को वहां नहीं बल्कि अमुक घर में रखिये।''

महाराज चौंके। सचमुच वे भयानक गलती कर रहे थे। उन्हें सही मार्ग सूझ गया, पर उन्हें टोकने वाला है कौन? उन्होंने सिर उठाया। सामने कैदी के रूप में झवेरभाई खड़े थे।

उन्होंने, जैसा कि हो सकता था, उस कैदी के बारे में पूरी जानकारी चाही। उसके प्रति उनके मन में आदर की भावना पैदा हो गयी थी। जब उन्हें कैदी के इतिहास का पता चल गया तो उन्होंने झवेरभाई को सम्मान सहित कैद से मुक्त कर दिया।

तो ऐसे देशभक्त और निर्भीक पिता के घर 31 अक्तूबर, सन् 1857 के दिन वल्लभभाई का जन्म हुआ। उनकी मां तब पिता के घर नडियाद में थीं। उनके नाना की आर्थिक स्थिति उनके पिता से अच्छी थी। उनकी मां लाडबाई घर के कामों में बहुत कुशल और सुशील स्वभाव की महिला थीं। गरीब होने पर भी आतिथ्य करना वे खूब जानती थीं। सेवा और स्नेह की तो वे मूर्ति थीं। गांधी जी ने जब चरखा चलाने पर जोर दिया तो वे घर के कामों से अवकाश मिलते ही कातने बैठ जाती थीं।

वे झवेरभाई की दूसरी पत्नी थीं। उनके घर पांच पुत्रों और एक पुत्री का जन्म हुआ था। इनमें तीसरे और चौथे पुत्र विट्ठलभाई और वल्लभभाई भारत के इतिहास में अमर हो गये हैं।

हमारे सरदार के जीवन पर उनके माता-पिता के धर्मपरायण, सेवाभावी और संयममय जीवन का बहुत प्रभाव पड़ा था। डरना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था। सहनशीलता इतनी थी कि देखने वाला दांतों तले उंगली दबा ले। बगल के फोड़े को उन्होंने अपने हाथ से कैसे तपते हुए लोहे से दाग दिया था यह कहानी आप पढ़ चुके हैं। ऐसी ही एक घटना तब घटी थी जब वे बैरिस्टर बनने इंग्लैंड गये थे। वहां एक बार उन्हें बुखार हो गया। उसी के साथ पैर में दर्द भी रहने लगा। डाक्टर ने देखकर बताया, "नहरुआ निकला है। आपरेशन करना होगा।"

आपरेशन किया गया। एक बार, दो बार, पर नहरुआ नहीं निकला। सर्जन ने कहा, "पैर काटना होगा।"

वल्लभभाई लंगड़ा बनना कैसे स्वीकार करते। उन्होंने दूसरे डाक्टर को दिखाया। उसने बताया, "एक बार और आपरेशन करना होगा और यदि बेहोशी की दवा न सूंघो तो अच्छे होने की अधिक संभावना है।"

वल्लभभाई बोले, "मुझे बेहोशी की दवा सूंघने की जरूरत नहीं है। मैं कैसी भी पीड़ा हो, सह सकता हूं।"

और आपरेशन पूरा होने तक उन्होंने एक बार भी आह नहीं की। डाक्टर और उनके साथी चकित रह गये। बोले, "ऐसा रोगी हमें आज से पहले कभी नहीं मिला।"

कोई अंत नहीं इन कहानियों का। भय तो जैसे उन्हें छू तक नहीं गया था। तब की बात है जब वे वकील बन चुके थे। गोधरा में एक बार प्लेग फूट निकला। अदालत के नाजिर का लड़का उसकी चपेट में आ गया। सरदार ने उसकी सेवा शुश्रूषा करने में कोई कसर उठा न रखी, पर वे उसे बचा न सके। इसके विपरीत वे स्वयं उसका शिकार हो गये। उनके गांठ निकल आयी। प्लेग का ज्वर तब बड़े-बड़े वीरों को पराजित कर देता था, पर हमारे सरदार उसी अवस्था में पत्नी को लेकर आणंद पहुंचे। वहां पहुंचकर उन्होंने पत्नी से कहा, "तुम करमसद जाओ, मैं नडियाद जाता हूं। वहां ठीक हो जाऊंगा।"

पति प्लेग से पीड़ित हो और पत्नी को उससे अलग होने को कहा जाय, इससे अधिक करुण स्थिति और क्या हो सकती है। लेकिन सरदार की पत्नी को 'सरदार की पत्नी' बनना था। उसे जाना पड़ा।

शिक्षा के लिए वल्लभभाई को करमसद, पेटलाद, नडियाद, बड़ौदा न जाने कहां-कहां जाना पड़ा। पर जहां भी गये सरदार बनकर रहे। नडियाद में उनके नाना का घर था। वह गुजरात के विद्वानों की भूमि मानी जाती है। वहीं के हाई स्कूल में वे भरती हुए। लेकिन बड़ौदा में अंग्रेजी की शिक्षा और भी अच्छी मिलेगी यह जानकर वे वहां के हाई स्कूल में चले गये। यहां गुजराती के शिक्षक थे श्री छोटालाल। वे पढ़ाते तो गुजराती थे पर संस्कृत के बड़े प्रेमी थे। कोई विद्यार्थी संस्कृत छोड़कर गुजराती की कक्षा में आता, तो वे बड़े दुखी होते। हमारे वल्लभभाई ने ऐसा ही किया। उस समय छोटाभाई उनका स्वागत करते हुए विनोद में बोले, ''पधारिये महापुरुष! आपने संस्कृत छोड़कर गुजराती भाषा तो ली, परंतु क्या आप जानते हैं कि जिसकी संस्कृत भाषा अच्छी नहीं होती उसकी गुजराती भाषा भी अच्छी नहीं होती।''

उनके कहने का ढंग ऐसा था कि वल्लभभाई ने इसे अपना अपमान समझा। वे बोले, ''साहब, सभी विद्यार्थी यदि संस्कृत भाषा लें तो आपकी क्लास में कोई नहीं आयेगा। आपको घर बैठना पड़ेगा।''

छोटालाल जी ऐसे खरे उत्तर के आदी नहीं थे। उन्होंने वल्लभभाई को बैंच पर खड़ा होने का आदेश दिया और एक से दस तक के पहाड़े लिख लाने को कहा।

वल्लभभाई ने इसे भी अपना अपमान समझा। उन्होंने पहाड़े नहीं लिखे। मास्टर जी ने सजा और बढ़ा दी। वल्लभभाई ने जरा भी चिंता नहीं की। अब तो दोनों ने हठ पकड़ ली। सजा बढ़ते-बढ़ते दो सौ पहाड़े लिखने तक पहुंच गयी। अगले दिन मास्टर जी ने पूछा, ''क्यों महाशय, आप दो सौ पाड़े [1] लाये या नहीं?''

वल्लभभाई ने उत्तर दिया, ''साहब, दो सौ पाड़े लाया तो था, परंतु उनमें दो मरखने थे। यहां पहुंचते ही वे तूफान मचाने लगे। वे तो भागे ही, दूसरों को भी भगा ले गये। एक भी नहीं बचा।''

बड़ा अनोखा मजाक था पर मास्टर साहब के पास इसे सहने वाला दिल न था। क्रुद्ध होकर बोले, ''यदि तुम कल पहाड़े लिखकर नहीं लाये तो, तुम्हारे खिलाफ उचित कार्यवाही की जायेगी।''

दूसरे दिन वल्लभभाई ने क्या किया। एक परचे पर लिखा ''दो सौ पहाड़े'' और वह परचा मास्टर जी को दे दिया।

जानते हैं फिर क्या हुआ? उन्हें दोषी विद्यार्थी के रूप में हेडमास्टर साहब के सामने पेश किया गया। उस समय अपने बचाव के रूप में वल्लभभाई ने जो कुछ कहा था वह उनके चरित्र के एकदम अनुरूप था। वे बोले, ''साहब! मास्टरजी ने मेरे

1. गुजराती में 'पाड़ा' शब्द के दो अर्थ होते हैं-(1) पहाड़े (2) भैंस के नर बच्चे

उद्धत उत्तर के कारण मुझे बैंच पर खड़ा होने की सजा दी वह मैंने मान ली लेकिन बाद में पहाड़े लिखने को कहा। वह अन्याय था। मैं छठे दरजे का विद्यार्थी हूं। मुझे छोटे दरजे में पढ़ने वाले छह-सात वर्ष के बालकों को दी जाने वाली सजा दी जाय–पहाड़े लिखने को कहा जाय, यह मेरा अपमान है। मेरी पुस्तक में से कुछ लिखने को कहा जाता तो, मेरा कुछ लाभ भी होता। इसलिए मैंने उनकी बात नहीं मानी। इसका जो भी परिणाम होता हो, मैं भुगतने के लिए तैयार हूं।''

सब कुछ समझकर हेडमास्टर ने निर्णय दिया कि विद्यार्थी निर्दोष है।

इस प्रकार सत्याग्रह का पहला पाठ उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में ही पढ़ा था। मैट्रिक पास करने के बाद वे डिस्ट्रिक्ट प्लीडर की परीक्षा की तैयारी करने लगे। गरीबी के कारण नयी पुस्तकें नहीं खरीद पाते थे। पुरानी पुस्तकें उधार ले आते थे। फिर भी पहले प्रयत्न में ही वे पास हो गये। थे वे महत्वाकांक्षी। विलायत जाकर बैरिस्टर बनना चाहते थे, पर इतना पैसा कहां से लाते। इसलिए उन्होंने निर्णय किया कि पहले वे वकालत करेंगे और धन इकट्ठा करने के बाद विलायत जायेंगे।

वकील साहब

वल्लभभाई वकील बने और बहुत जल्दी ही उनकी धाक जम गयी। एक तो वे स्वभाव से निडर थे, दूसरे घमंडी मजिस्ट्रेटों को सबक सिखाने की कला में भी बहुत निपुण थे। अपने मुवक्किलों को जिताने के लिए वे किस सीमा तक जा सकते थे इसका उदाहरण दिया जा चुका है। इसलिए भी वे बहुत लोकप्रिय थे।

एक बार आबकारी विभाग के इंस्पेक्टर ने गैरकानूनी शराब बनाने वाले एक व्यक्ति को गिरफ्तार किया। साथ में शराब से भरी दो बोतलें भी थीं। वे मजिस्ट्रेट के पास रख दी गयीं।

उस व्यक्ति ने वल्लभभाई को अपना वकील नियुक्त किया। मुकदमा शुरू हुआ। ज़िरह हुई। शराब की बोतलें प्रमाण के रूप में पेश की गयीं। वल्लभभाई ने उन्हें देखा। कहा, ''इनके भीतर क्या है, डाक्टर इसकी जांच करे।''

पता लगा, उनमें शराब नहीं शुद्ध जल है। अब तो इंस्पेक्टर बड़े घबराये, लेकिन क्या हो सकता था। प्रमाण के अभाव में वल्लभभाई मुकदमा जीत गये। बाहर आकर इंस्पेक्टर ने वल्लभभाई से पूछा, ''वकील साहब! आखिर यह हुआ क्या? बोतलों के अंदर शराब थी। वह गयी कहां?''

वल्लभभाई हंसे, बोले, ''आप नहीं जानते, मैं जानता हूं। मजिस्ट्रेट पियक्कड़ है, आपकी शराब वह पी गया और बोतलों में पानी भरवा दिया।''

उन दिनों एक डाकू था। नाम था उसका गुलाब राजा। वह जन्म से डाकू नहीं था। खराब समाज-व्यवस्था के कारण न जाने कितने सीधे सच्चे लोग डाकू बन जाते हैं। वैसे ही वह भी बन गया था। वह तेज मिजाज था। बड़े उपद्रव किये थे उसने। उसकी कहानी कलेक्टर मि. वुड तक पहुंची। उन्होंने आदेश दिया कि गुलाब को पकड़कर उनके सामने पेश किया जाय। संयोग की बात, उस समय गुलाब राजा वहीं मौजूद था। उसने कलेक्टर से कहा, ''साहब! मैं ही गुलाब राजा हूं। अपराध करके आपके सामने आऊं तब आप मुझे सजा देना। इस समय मैं निर्दोष हूं। मुझे आप कुछ नहीं कह सकते।''

इतना कहकर वह वहां से ऐसा गायब हुआ जैसे था ही नहीं। मि. वुड ने इसे

अपना अपमान समझा। उन्होंने एक व्यक्ति से उसके विरुद्ध झूठी शिकायत करवा दी कि गुलाब राजा ने उस पर हमला किया और ईंट मारी। वह अदालत में हाजिर नहीं हुआ। उसे कोई पकड़ ही नहीं सका लेकिन फिर भी कलेक्टर के दबाव के कारण मजिस्ट्रेट ने एकपक्षीय निर्णय देते हुए उसे नौ महीने की कैद की सजा सुना दी।

अब तो गुलाब राजा सचमुच बागी बन गया। उसने डाके डालने शुरू कर दिये। वह लूटमार मचायी कि पुलिस की नाक में दम आ गया। वह कानूनी सलाह लेने वल्लभभाई के पास आता था। पुलिस कप्तान ने उन्हें कहला भेजा, ''वह सरकार का गुनाहगार है। अब आपके पास आये तो मुझे सूचना दें।''

वल्लभभाई तो वल्लभभाई थे, उत्तर दिया, ''वह मेरे पास आता है तो किसी विश्वास के कारण आता है। मैं विश्वासघात नहीं कर सकता।''

पुलिस अधिकारी ने फिर कहा, ''आप यह काम कर दें तो आपकी नियुक्ति पुलिस प्रोसिक्यूटर के पद पर हो सकती है।''

वल्लभभाई गरज उठे, ''मुझे ऐसे काले काम करके पुलिस प्रोसिक्यूटर नहीं बनना है। काला मुंह हो ऐसा काम करने वाले का।''

वकीलों के कमरे का एक दरवाजा अदालत में खुलता था। वकील लोग उसी दरवाजे से अदालत में आते-जाते थे। एक दिन मुंसिफ साहब ने वह दरवाजा बंद करवा दिया। उन्होंने कहा, ''बार-बार आने-जाने से काम में खलल पड़ता है।''

दरवाजा बंद होने से वकीलों की कठिनाई बढ़ गयी। आने-जाने में देर होने लगी। अदालत में कब किस वकील की जरूरत होगी, यह जानना कठिन हो गया। यह देखकर वे सब मुंसिफ के पास गये। उसको अपनी कठिनाई बतायी और दरवाजा खोल देने की प्रार्थना की।

लेकिन मुंसिफ नहीं माने। सरदार उन दिनों अधिकतर फौजदारी अदालत में काम करते थे। कुछ दिन बाद इधर आये तो इस घटना का पता चला। उन्होंने सब वकीलों को इकट्ठा किया, कहा, ''मुंसिफ साहब से कह दो कि दरवाजा खोल दें, नहीं तो हम हड़ताल कर देंगे।''

बात मुंसिफ तक पहुंची। वह चौंके पर एकाएक झुकते कैसे। लेकिन जब खेड़ा जिले के जज ने उन्हें बुलाकर कहा, ''इस झगड़े को जल्दी निबटाओ,'' तो वह सचमुच घबरा उठे। उन्होंने एक परिचित वकील को बुलाकर समझौता करा देने की इच्छा प्रकट की।

वे वकील सरदार के पास आये, बोले, ''मुंसिफ साहब आपको बंगले पर बुलाते हैं।''

सरदार ने जवाब दिया, ''मैं नहीं जाऊंगा। जिसे गरज हो वह मेरे पास आये।'' मुंसिफ भी मुंसिफ थे। वकील के पास जाने में उनकी हेठी होती थी पर समझौता

करना भी जरूरी था। बोले, "उनसे कहो कि वे और दूसरे वकील मेरे साथ जलपान करें। मैं समझौता करना चाहता हूं।"

सरदार की शर्त थी, "आ सकते हैं पर उन्हें अपने काम के लिए अफसोस जाहिर करना होगा।"

बेचारा मुंसिफ। उसने ऐसे वकील देखे कहां थे। उसे झुकना पड़ा। उसने माफी मांगी। सबको चाय पिलायी और दरवाजा खोल दिया।

लेकिन उनकी अनोखी सूझबूझ का परिचय देने वाली घटना सचमुच अनोखी है: सरदार के एक परिचित भाई रेलवे पुलिस में थानेदार थे। उनकी अपने अफसर से नहीं बनती थी। अफसर थे अंग्रेज। उनके भाई सरकार में बड़े ऊंचे पद पर थे। मौका पाकर उस अफसर ने एक दिन थानेदार को फांस लिया। उन पर एक रुपये की लकड़ी की चोरी का इल्जाम लगाया। उन दिनों रेलवे में चोरी डाके बहुत पड़ते थे। इसलिए यह छोटा-सा मामला बड़ी आसानी से बड़ा बन गया। इसकी जांच के लिए खास अदालत बनी। पैरवी के लिए अहमदाबाद के सरकारी वकील आये। अदालत में जाने से पहले सारी जांच खुद उस अफसर ने की। वह एक बात खासतौर पर जानना चाहता था—क्या थानेदार को पहले भी सजा हुई थी?

थानेदार ने सारा मामला सरदार को सौंप दिया था। इनकी सलाह से थानेदार अपने-आप अंग्रेज अफसर के पास गया। कहा, "मुझे पहले सजा हो चुकी है।"

अफसर को अचरज भी हुआ, खुशी भी। पूछा, "कितनी सजा हुई?"

"नौ महीने की। एकदम अकेले में रखा गया था?"

"हूं! कब की बात है?"

"बहुत पुरानी। कोई तीसेक साल पहले की।"

अफसर तो यही चाहता था। उसने सब बातें लिख लीं और मुकदमा अदालत में भेज दिया। मामला पेश हुआ तो सरदार एकाएक बीमार पड़ गये। उनकी जगह सरदार के बड़े भाई विट्ठलभाई पटेल पैरवी करने लगे। वह थे लड़ाकू। सरकारी वकील से लड़ पड़े। इसका फल बुरा हुआ। थानेदार को छः महीने की सजा हो गयी।

सरदार ने सुना। वे तनिक भी नहीं घबराये। उन्होंने बड़ी अदालत में अपील करायी। उधर थानेदार को जमानत पर छुड़ाने की कोशिश भी की। एक बड़े बैरिस्टर पैरवी करने को बुलाये गये। सरकार ने इस बात का कड़ा विरोध किया। अरजी नामंजूर हो गयी। तब सरदार ने अपील की सुनवाई तुरंत करने की मांग की।

आखिर अपील की पेशी हुई। सरकारी वकील वहां बहुत गरजे। कहा, "ऐसे मामले बड़ी कठिनाई से पकड़े जाते हैं। फिर अपराधी पुलिस का अफसर है। यह कितनी भयानक बात है। बाड़ ही खेत को खा रही है।"

सफाई के बैरिस्टर बोले, "पहले अपराध साबित कीजिये, तब सोचिये कि अपराधी कौन है? उससे पहले इस बात पर विचार नहीं किया जा सकता।"

सरकारी वकील ने कहा, "अपराधी को पहले भी सजा हो चुकी है। इस बात पर भी आप विचार कीजिये।"

सुनकर सफाई के बैरिस्टर ठगे से देखते रह गये। जज ने उनसे इस बात का जवाब मांगा। वे क्या कहते। सरदार पर बिगड़ पड़े। बोले, "मुझे पहले क्यों नहीं बताया? मैं कभी अपील करने की सलाह न देता।"

वह मुकदमा छोड़कर बैठ गये। एक अजीब हालत पैदा हो गयी। अदालत खचाखच भरी हुई थी। सरदार के कारण लोगों को इस मुकदमे में बड़ी दिलचस्पी थी। सब सोच रहे थे कि देखें, आगे क्या होता है। बचने की राह नहीं दिखायी देती। तभी सरदार उठे। उन्होंने अदालत से कहा, "मुजरिम को पहले सजा होने का सबूत दिखाया जाय।"

जज ने बात मान ली। इस पर सरकारी वकील भभक उठे। बोले, "मुजरिम ने सब कुछ खुद कबूल किया है। अब आप और क्या सबूत चाहते हैं?"

सरदार ने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप यह बयान पढ़ लिया। पढ़ चुके तो बोले, "साहब, इसमें लिखा है कि मुजरिम को नौ महीने की सजा हुई थी।"

सरकारी वकील ने कहा, "जी हां।"

"उसे एकदम अकेले में रखा गया था।"

"बेशक! उसका अपराध संगीन रहा होगा।"

"मुजरिम को यह सजा तीस साल पहले हुई थी।"

"जी हां, सब लिखा तो है।" सरकारी वकील ने बेताब होकर कहा।

"जी हां, मैं लिखा हुआ ही पढ़ रहा हूं।" सरदार बोले, "इसमें यह भी लिखा है कि मुजरिम की उम्र अब तीस साल की है।"

सरदार की यह बात सुनकर सब चौंक पड़े। तीस साल के आदमी को तीस साल पहले नौ महीने की सजा! . . .सो भी अकेले में . . .।

अब कुछ समझना बाकी न रहा। अदालत हंसी से गूंज उठी। सरकारी वकील पीले पड़ गये। फिर सरदार ने जो बहस की, वह शानदार थी। अंग्रेज अफसर कितना चतुर था, सरकारी वकील की दलीलें कितनी तेज थीं, सरदार ने सबकी पोल खोल दी। मुकदमा ढीला पड़ गया। जज ने थानेदार को बेकसूर बताकर छोड़ दिया। हां, अंग्रेज अफसर की खासी आलोचना की। बेचारे को आखिर में नौकरी छोड़नी पड़ी।

उनकी बड़ी इच्छा थी विलायत जाकर बैरिस्टर बनने की। उसी के लए धन इकट्ठा कर रहे थे। उन्हीं के शब्दों में, "इसके बाद मैंने कानून का अध्ययन किया और वकालत का धंधा करके विलायत के खर्च जितनी रकम कमाने के बाद वहां जाने का निश्चय किया। परंतु जिस कंपनी के द्वारा विलायत जाने की व्यवस्था करने के लिए पत्र-व्यवहार किया, उसका मेरे नाम आया उत्तर मेरे बड़े भाई को मिल गया–

क्योंकि अंग्रेजी में हम दोनों वी.जी. पटेल कहे जाते हैं। उत्तर पढ़कर बड़े भाई ने मुझसे कहा, 'मैं तुमसे बड़ा हूं। मुझे विलायत जाने दो। मेरे लौटने के बाद तुम्हें जाने का मौका मिलेगा, लेकिन तुम्हारे लौटने के बाद मैं विलायत नहीं जा सकूंगा।' मैंने भाई को पंद्रह दिन का समय दिया। पंद्रहवें दिन वे विलायत के लिए रवाना हो गये। तीन वर्ष में वे लौट आये। उसके बाद मैं विलायत गया।''

विलायत में जाकर सरदार राग-रंग में नहीं पड़े। वहां के जीवन में घुलमिलकर उन्होंने अपने संस्कार नहीं खोये। जिस काम के लिए वे वहां गये थे उसी में तल्लीन रहे। उनके निवास-स्थान से मिडल टेंपल ग्यारह मील दूर था! सवेरे नाश्ता करके, पुस्तकालय खुलने के समय, वे पैदल चलकर वहां पहुंच जाते थे। सारे दिन कानून की पुस्तकें पढ़ते रहते। दोपहर को दूध और डबल रोटी मंगाकर खा लेते और जब शाम को पुस्तकालय बंद करने वाला चपरासी आकर उनसे कहता कि साहब, पुस्तकालय बंद करने का समय हो गया तब वे वहां से उठते। तभी तो वे प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान लेकर पास हुए। उन्हें पचास पौंड का पुरस्कार मिला और दो टर्मों की छूट मिली। उनके लिखे उत्तर इतने सुंदर थे कि मुख्य परीक्षक ने बंबई के मुख्य न्यायाधीश को लिखा, ''वल्लभभाई पटेल कुशल न्यायाधीश हो सकते हैं। इसलिए उन्हें न्याय विभाग में किसी ऊंचे पद पर नियुक्त कर देना चाहिए।''

चूंकि उन्हें न्यायाधीश नहीं बनना था इसलिए उस सिफारिश से उन्होंने लाभ नहीं उठाया। अहमदाबाद आकर वे बैरिस्टरी करने लगे ओर बहुत जल्दी यहां भी उनकी धाक जम गयी।

अपने बड़े भाई से उन्होंने समझौता किया था। वे कहा करते थे, ''भारत को स्वतंत्र कराना हो तो किसी-न-किसी को तो सेवा कार्य में लगना ही चाहिए। हम दोनों भाइयों ने बंटवारा कर लिया है। विट्ठलभाई देश सेवा करें, मैं पैसे कमाऊं। वे पुण्य कमाएं, मैं पाप कमाऊं। परंतु वे जो काम करेंगे उसमें मेरा भाग तो रहेगा ही।''

उस समय क्या वे जानते थे कि बहुत शीघ्र ही वे भी 'पाप' कमाना छोड़कर 'पुण्य कमाने' के क्षेत्र में आ जायेंगे।

रामकृष्ण के विवेकानंद

गांधी जी सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे और अहमदाबाद के कोचरब नामक स्थान में आश्रम बना कर रहने लगे। वल्लभभाई शुरू-शुरू में उनका मजाक उड़ाते थे। कोई उनके पास जाता तो उसे रोकते, कहते, ''वहां जाकर क्या सुनना है? वे तो गेहूं से कंकड़ बीनने की बात कहेंगे। ऐसा करने से क्या देश स्वतंत्र होने वाला है।''

लेकिन गांधी जी इतना पास आ चुके थे कि अधिक देर तक उनसे दूर रहना कठिन था। उन्होंने जब गुजरात सभा का सदस्य बनने के लिए इस आशय की शर्त रखी कि ''वह प्रजा को सत्ताधारियों से भीख मांगने की सलाह न दें। परंतु इस प्रकार शिक्षा दें कि उसमें सरकार से अपने उचित अधिकार प्राप्त करने की शक्ति पैदा हो।'' तो वल्लभभाई के मन में उत्साहवर्धक कौतूहल पैदा हुआ। यह कैसा आदमी है जो भीख मांगने से इंकार करता है और प्रजा के नाते अपने अधिकार भोगने की शक्ति प्राप्त करने को कहता है।

नवंबर, 1917 में गोधरा में गुजरात राजनीतिक परिषद हुई। इसमें बेग़ार संबंधी एक प्रस्ताव पास हुआ। यह प्रथा उन्हें बहुत खटकती थी। इस प्रथा के कारण गरीब लोगों को जो कष्ट होते थे वे उन्होंने देखे थे। इसलिए उन्होंने इस प्रथा को हटवाने का काम अपने हाथ में ले लिया। यहीं से उनके सार्वजनिक जीवन का आरंभ होता है।

इसी समय बहुत वर्षा के कारण खेड़ा जिले में फसल बहुत कम हुई थी यानी रुपये में चार आना भी नहीं हुई थी। सरकार लगान नहीं वसूल कर सकती थी पर उसने झूठे आंकड़े तैयार किये और कहा कि फसल चार आने से अधिक हुई है। लगान की वसूली स्थगित नहीं होगी। किसान गांधी जी के पास पहुंचे। उन्होंने स्वयं इस बात की जांच की। किसानों की बात सच थी। उस जांच में वल्लभभाई ने बहुत काम किया। इतना ही नहीं जब वहां सत्याग्रह शुरू हुआ तो वे अंत तक गांधी जी के मुख्य सहायक बने रहे। उस सत्याग्रह की समाप्ति पर गांधी जी ने उनके लिए कहा था, ''मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि जब वल्लभभाई से मैं पहले-पहल मिला तब मैंने सोचा था कि वह अक्खड़ पुरुष कौन होगा परंतु जब मैं उनके संपर्क

में आया तब मुझे लगा कि वल्लभभाई तो मेरे लिए अनिवार्य हैं।''

परमहंस रामकृष्ण ने अपने विवेकानंद को पहचान लिया था। वल्लभभाई ने वकालत से पैसा कमाने की योजना को त्यागकर आजीवन जनसेवा करने का धर्म स्वीकार कर लिया। उसके बाद जब सन् 1919 में रॉलेट एक्ट को लेकर गांधी जी ने देशव्यापी सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया तो उन्होंने घरबार सब कुछ त्याग दिया। अहमदाबाद म्युनिसिपल कमेटी के सदस्य के नाते उन्होंने सरकार से बार-बार लोहा लिया और जनता में प्राणशक्ति फूंकी। उसके शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए अनेक सुविधाएं प्रस्तुत कीं।

बहुत शीघ्र ही वे गुजरात में गांधी जी के प्रधान शिष्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। जब असहयोग आंदोलन में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के अनुसार चलने वाले स्कूल-कालेजों के बहिष्कार की बात जनता के सामने आयी तब गुजरात के विद्यार्थियों ने एक सभा में उनसे पूछा, ''हम कालेज की शिक्षा को छोड़कर यदि गुजरात विद्यापीठ में आयें तो वहां हमें कैसी शिक्षा मिलेगी?''

वल्लभभाई ने उत्तर दिया, ''गुजरात विद्यापीठ यदि, गुजरात कालेज में तुमने जो कुछ पढ़ा है, उसे भूल जाने की शिक्षा दे तो वह काफी होगा।''

अंग्रेजी शिक्षा के बहिष्कार आंदोलन के चलते-चलते ही नागपुर में झंडा सत्याग्रह शुरू हो गया। कुछ नागरिक राष्ट्रध्वज के साथ सिविल लाइंस में जा रहे थे कि पुलिस ने उन्हें रोक दिया। सेठ जमनालाल बजाज इस अपमान को न सह सके। यह नागरिक स्वतंत्रता का हनन था। गांधी जी तब जेल में थे। जमनालाल जी ने निश्चय किया कि वे इस आज्ञा का विरोध करेंगे। वे झंडा लेकर सिविल लाइंस गये और गिरफ्तार हो गये। उसके बाद कांग्रेस ने गंभीरता से इस प्रश्न पर विचार किया और सत्याग्रह की घोषणा कर दी। इसके लिए एक अनुभवी नेता की आवश्यकता थी। उसने वल्लभभाई को इस पद के लिए चुना।

इस समय देश में स्वराज्य पार्टी का जन्म हो चुका था। गांधी जी चौरीचौरा कांड के बाद आंदोलन वापस ले चुके थे। लोग यह समझने लगे थे कि भारत में सत्याग्रह आंदोलन सफल नहीं हो सकता। विधान सभाओं में जाकर ही वैधानिक आंदोलन किये जाने चाहिए।

लेकिन वल्लभभाई ने अपनी योजना इस कुशलता से तैयार की कि सभी प्रांतों के लोग दल बनाकर सत्याग्रह में भाग लेने नागपुर आने लगे। सारा देश जाग उठा। श्रीमती कस्तूरबा गांधी के नेतृत्व में गुजरात का एक दल भी वहां पहुंच गया। सरदार ने इसी समय एक वक्तव्य दिया। इसका सार यह था कि राष्ट्रध्वज के साथ जुलूस निकालने का उद्देश्य यूनियन जैक का अपमान या किसी को असुविधा पहुंचाना नहीं है। यह तो भारतीय जनता के मूलभूत अधिकार की रक्षा का प्रश्न है।

अब सरकार के सामने कोई मार्ग नहीं रह गया था। उसे समझौता करना पड़ा।

उसने राष्ट्रध्वज के साथ सिविल लाइंस में जुलूस निकालने और सत्याग्रही कैदियों को जेल से मुक्त करने की बात स्वीकार कर ली।

नागपुर झंडा-सत्याग्रह के बाद बोरसद तालुके में मुंडकर आंदोलन का संचालन भी सरदार ने ही किया। इसके पीछे जो कहानी है वह बहुत रोमांचक है। कैसे सरकार की गलत नीति के कारण भले आदमी डाकू बन जाते हैं, यह कहानी इसका अच्छा उदाहरण है। गोरैल गांव में बाबर देवा नाम का एक पाटण वाड़िया रहता था। उसके तीन भाई थे। चारों भाई और उनकी मां सब बड़े स्वाभिमानी थे। थे जरायमपेशा जाति के। एक बार कहीं चोरी हुई। शक में बाबर देवा को भी जेल में बंद कर दिया गया। पीछे पुलिस-पटेल उसकी मां को सताने लगी। मां ने रो-रो कर बेटे को बताया। बस बेटे का रक्त उबल पड़ा। वह जेल से भाग कर गांव पहुंचा और पुलिस-पटेल की हत्या कर दी। उसके बाद वह बागी बन गया। अंत में लूट मार करने लगा। उसने अपना एक दल बना लिया। उसके देखा-देखी दूसरे बागियों ने भी दल बना लिये। चारों और आतंक छा गया। पुलिस जब इन डाकुओं से जनता की रक्षा नहीं कर सकी तब सरकार ने दूसरे प्रांत के चार सौ पुलिस के जवान वहां तैनात किये थे। उन पर जो खर्च आता था वह कर के रूप में जनता से वसूल करने की व्यवस्था की। वह मुंडकर के नाम से जाना जाता था। सरकार का कहना था कि जनता अपराधियों का साथ देती है, इसलिए खर्च उसे ही देना चाहिए।

डाकू तो सरकार की नीति से ही पैदा होते हैं। जनता कर क्यों दे? इसी बात को लेकर वे वल्लभभाई के पास पहुंचे। जांच के बाद और चौंकाने वाली बात का पता लगा। तब एक सभा में उन्होंने निर्णय किया कि यह कर अन्यायपूर्ण है। हमें इसे अदा नहीं करना चाहिए। सरकार दमन करने के लिए जो कुछ करे उसे सहना चाहिए।

यह सत्याग्रह का आरंभ था। सरकार ने सख्त-से-सख्त कदम उठाये। जब्ती के आदेश निकाले लेकिन अधिकारियों के पहुंचने तक गांव में सन्नाटा छा जाता था। बाजार रात को लगते थे। ऐसे शांत सत्याग्रह को देखकर सरकार दो महीने में ही परेशान हो गयी। सरदार जनता को तो शांत और सच्चे बने रहने को कहते ही थे, अपराधियों (डाकुओं) को भी कहते थे, ''यह तो एक यज्ञ का आरंभ है। यह शुद्धि का यज्ञ है। कोई इसे बुरे कामों से भ्रष्ट न करे। अपराधी भाइयों को जनता को सताने और परेशान करने का काम छोड़ देना चाहिए। उन्हें शुद्धि के साथ इस यज्ञ में साथ देना चाहिए। और यदि वे ऐसा न कर सकें, तो उन्हें सत्याग्रही गांवों को छोड़ कर और कहीं भाग जाना चाहिए।''

सचमुच उसके बाद डाकू बोरसद तालुके के किसी गांव में दिखाई नहीं दिये। सरदार ने सरकार पर भी जोरदार प्रहार किये। उन्होंने कहा, ''सरकार ने एक कुप्रसिद्ध डाकू को पकड़ने के लिए दूसरे उतने ही कुप्रसिद्ध डाकू की मदद ली और उसे जरूरी हथियार बंदूक वगैरह देकर मनमाने ढंग से लूटपाट करने दी, प्रजा को सताने

दिया और हत्याएं करने दीं–यह खुला इलजाम मैं सरकार पर लगाता हूं। सरकार ही डाकुओं को पैदा करने वाली है। सरकार ही उनका मार्गदर्शन करने वाली है। अब वही सरकार निर्दोष प्रजा से दंड के रूप में कर वसूल करने के लिए उस पर जुल्म करती है। चोरी करने वाला चोर, उसका न्याय करने वाले न्यायाधीश को ही सजा दे–यह इसका उत्तम उदाहरण है।''

अब सरकार चौंकी। उसने जांच के लिए होम सेक्रेटरी को भेजा। उसने जो कुछ देखा और सुना उससे उसे जनता के निर्दोष होने का विश्वास हो गया। उसने आदेश दिया कि मुंडकर रद्द कर दिया जाय। जो सामान जब्त किया गया है वह जिनका है उनको लौटा दिया जाय।

सन् 1927 में जब गुजरात में भयंकर बाढ़ आयी तब सरदार अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी और प्रांतीय कांग्रेस दोनों के अध्यक्ष थे। उस समय उन्होंने जिस प्रकार काम किया उसकी चर्चा की जा चुकी है। लेकिन इतना ही नहीं था। उन्होंने वहां की दयनीय स्थिति का ब्यौरा बड़े भाई विट्ठलभाई को भी भेज दिया था। वे तब केंद्रीय असेंबली के अध्यक्ष थे। उसे पढ़कर वे बहुत द्रवित हुए। उन्होंने वायसराय लार्ड इर्विन को गुजरात जाकर अपनी आंखों से सब कुछ देखने की सलाह दी।

वायसराय गये। सब कुछ देखा। वल्लभभाई से भी मिले। परिणाम यह हुआ कि उन्हें एक करोड़ की रकम, गिरे हुए मकानों को फिर से बनवाने के लिए, मिल गयी। विरोधी सरकार से इतनी बड़ी रकम ले लेना अनहोनी बात थी।

इस कार्य से जनता का मनोबल तो बढ़ा ही गांधी जी ने भी सेवा भावना की इस विजय को, सत्य और अहिंसा की विजय माना।

बारडोली के सरदार

वल्लभभाई का जीवन अब तक पूर्ण रूप से सार्वजनिक बन चुका था। परंतु उन्हें जिसने 'सरदार' बनाया वह आंदोलन बारडोली में सन् 1928 में हुआ।

असहयोग आंदोलन के प्रारंभिक दौर में गांधीजी ने बारडोली को ही केंद्र बनाने का निश्चय किया था, पर चौरीचौरा की घटना के बाद उन्हें उस निश्चय को स्थगित करना पड़ा। फिर भी सरकार की कोप दृष्टि उस पर पड़ चुकी थी। इसलिए जब सन् 1928 में इस इलाके का रिविजन सेटलमेंट हुआ तो उसका लगान 22 प्रतिशत बढ़ा दिया गया।

प्रजा ने इसका प्रतिरोध किया। उसके प्रतिनिधियों का एक शिष्टमंडल सरकार से मिला लेकिन किसी ने उनकी बात नहीं सुनी। उनका उत्तर था कि माल विभाग के निर्णय में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

आखिर वे लोग वल्लभभाई के पास पहुंचे। पूरी छानबीन करने के बाद सरदार ने गांधी जी से कहा, "मैंने सारे मामले की जांच कर ली है। मुझे लड़ाई छेड़ना उचित मालूम होता है।"

गांधी जी का उत्तर था, "तब तो मुझे यही कामना करनी चाहिए कि विजयी गुजरात की जय हो।"

सरदार कैसे परीक्षा लेते थे। एक बड़े नेता और जमींदार से उन्होंने पूछा, "आपका क्या मत है?"

वे भाई बोले, "चार आदमी भी सच्चे होंगे तो सारा तालुका उनके साथ टिका होगा।"

"उनमें आप शामिल हैं?"

"नहीं साहब! मैं तो उन चार के पीछे चलने वाला हूं।"

वल्लभभाई बोले, "ऐसे चार नेता खड़े हो जायें जो महसूल-वृद्धि के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई में मरने खपने को तैयार हों।"

क्षण भर में चार आदमी खड़े हो गये।

फिर भी सरदार अपने भाषणों में बार-बार कहते थे, "मेरे साथ खिलवाड़ नहीं हो सकता। जिस काम में खतरा न हो उसमें मैं हाथ नहीं डालता। जो खतरा उठाने

को तैयार हों उनके साथ मैं खड़ा रहूंगा। आप हारेंगे तो सभी का भविष्य बिगड़ेगा।''

उन्होंने सरकार से भी बातचीत की पर वह क्यों सुनने वाली थी। आखिरकार (12 फरवरी, 1928 को) किसानों की एक सभा में एकमत से सत्याग्रह आंदोलन शुरू करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया, ''जमीन-महसूल वृद्धि की फिर से जांच कराने को तैयार न हो तब सरकार को एक पाई भी महसूल न दिया जाय। उसके फलस्वरूप सरकार जब्ती करे, जमीन छीन ले या अन्य जो भी कदम उठाये तो, उनसे होने वाले सारे कष्ट सहन किये जायें।''

एक ओर शक्तिशाली सरकार थी, दूसरी ओर अहिंसक किसान थे। उनके अनुशासन, नम्रता, दृढ़ता और श्रद्धा को देखकर सरदार भी गद्गद हो उठे थे। 'टाइम्स आफ इंडिया' ने तो सब कुछ देखकर यहां तक लिख दिया था कि बारडोली में 'बोल्शेविज्म' चल रहा है और वल्लभभाई उनके 'लेनिन' हैं।

सरकार ने जनता को सताने में कुछ न उठा रखा। औरतों को भी न छोड़ा। घरबार लूटे, आग लगायी, नीलाम बोले, पर जनता अडिग रही। सरदार का अनुशासन ही ऐसा था। सरकार का जब किसी तरह वश न चला तो वह बौखला गयी। उसने भैंसों तक को जेल में डाल दिया। अजीब-अजीब हुक्म जारी किये। एक में कहा, ''आम रास्तों के पास या गलियों में सार्वजनिक जगहों पर ढोल वगैरह बजाना अपराध माना जायेगा।'' सरदार ने इसका खूब मजाक उड़ाया। बोले, ''गोले-बारूद वाली सरकार ढोल-नगाड़ों से डर गयी। अब ढोल बजाना बंद कर दो, ऐसे हुक्म निकाल कर सरकार हमें फंसाना चाहती है। हमें जागते रहना चाहिए। हमें ढोल-नगाड़ों से कोई मतलब नहीं। हमें तो लोगों से लगान न देने को कहना है।''

एक दिन सरदार वालोड की सभा में यही बात समझा रहे थे। सभा थाने के सामने हो रही थी। थाने में भैंसें कैद थीं। सरदार का भाषण पूरा हुआ तो भैंसें चिल्लाने लगीं। सरदार बोल उठे, ''सुनो इन भैंसों की चीख। रिपोर्टरो, रिपोर्ट करो कि वालोड के थाने में भैंसें भाषण दे रही हैं। हमारे ढोल-नगाड़ों से यह सरकार उलट रही है। अब इन भैंसों की आवाज सुनो। ये भैंसें पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि इस राज में से इंसाफ मुंह छिपाकर भाग गया है।''

जेल के अंधेरे में रहते-रहते भैंसें कुछ सफेद पड़ गयी थीं। उनको देखकर सरदार ने कहा, ''ये तो मड़ामड़ी बन गयीं, यानी गोरों की जेल में रहते-रहते काली भैंसें भी गोरी मेम जैसी बन गयीं।''

दिन पर दिन जनता का नैतिक बल बढ़ रहा था। सरकार निस्तेज हो रही थी। वह समझौते के लिए तैयार थी पर वह कैसे हो। इसी समय श्री कन्हैया लाल मुंशी बारडोली आये। सब कुछ देखा। उसका प्रभावशाली विवरण बंबई की सरकार को भेजा—

''बारडोली तालुके में 80,000 पुरुष, स्त्रियां और बालक सुसंगठित विरोध

दिखाने की भीष्म-प्रतिज्ञा लेकर, उसके पालन के लिए कृत-निश्चय होकर खड़े हैं। आपके जब्ती करने वाले अधिकारियों को वहां कोई नाई तक नहीं मिलता। हजामत बनवाने के लिए उन बेचारों को मीलों तक भटकना पड़ता है। आपके एक अधिकारी की मोटर कीचड़ में फंस गयी थी। यदि श्री वल्लभभाई वहां न होते तो उसकी मोटर उस कीचड़ में ही फंसी रहती। जिस आदमी को हजारों की कीमत की जमीन नाममात्र की कीमत पर बेच दी गयी है, उसके घर में झाड़ू लगाने के लिए भंगी भी नहीं मिलता। कलेक्टर को रेलवे स्टेशन पर एक भी सवारी नहीं मिलती। श्री वल्लभभाई की इजाजत पर ही कोई सवारी उसे मिल सकती है। मैं जिस गांव में आया था उसमें एक भी पुरुष या स्त्री मुझे ऐसी नहीं मिली, जो अपने किये हुए निर्णय के लिए दुखी हो अथवा अपने स्वीकार किये हुए धर्ममार्ग पर चलने में दृढ़ न हो। श्री वल्लभभाई एक गांव से दूसरे गांव जाते थे तब मैंने देखा कि प्रत्येक गांव के पुरुष, स्त्रियां और बालक स्वेच्छा से उनका स्वागत करने के लिए दौड़ पड़ते थे। अनपढ़ स्त्रियां—जवान और बूढ़ी—अपने फटे-पुराने कपड़ों में आकर उनके माथे पर कुंकुम और अक्षत लगाती थीं और कड़ी मेहनत करने के बाद मिले हुए एक या दो रुपये अपने तालुके के धर्मयुद्ध के लिए उनके चरणों में श्रद्धा और भक्ति से अर्पण करती थीं, और विदेशी सरकार के अन्याय को दिखाने के लिए रचे हुए 'डगले डगले तारो अन्याय छे' (पग-पग पर तेरा अन्याय है) जैसे गीत बड़े उल्लास से अपने ग्रामीण लहजे में गाती थीं। यह सब देखकर मेरा मन यह स्वीकार किये बिना न रहा कि सरकारी रिपोर्ट में जो यह कहा गया है कि यह आंदोलन तो एक बनावटी आंदोलन है और लोगों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध लाद दिया गया है वह—नरम से नरम शब्दों में कहूं तो—बिलकुल झूठ है।''

इस पत्र का यह प्रभाव हुआ कि तटस्थ लोग भी सरकार पर समझौते के लिए जोर डालने लगे। इंग्लैंड में भी बेचैनी होने लगी परंतु सरकार अब भी अडिग थी। वह धमकी भरे वक्तव्य देती रही, पर वह केवल वर्षा के पूर्व की गरज थी। बंबई सरकार की कौंसिल के एक सदस्य सर चुन्नीलाल मेहता ने श्री मुंशी को गांधी जी और वल्लभभाई के पास भेजा। एक समझौते का मसविदा तैयार हुआ। बात चल निकली।

उसी समय गांधी जी बारडोली आये। कुछ किसान उनसे मिले। एक का परिचय देते हुए एक मित्र ने कहा, ''ये वल्लभभाई पटेल से कहने आये हैं कि हमने अपना सिर आपको दिया है अपनी नाक नहीं दी है।''

अर्थात् हमें अपनी इज्जत का सौदा नहीं करना है। ऐसा उत्साह था बारडोली के किसानों में। गोली चलने की बात पर एक किसान ने कहा था, ''गोली से सरकार कितनों को मारेगी। प्लेग से जितने लोग मर रहे थे उनसे ज्यादा गोली से नहीं मरेंगे। केवल मेरे गांव में प्लेग से चार सौ आदमी मर गये थे।''

सरकार को आखिर झुकना पड़ा। समझौता हुआ। उसमें कहा गया कि जांच की जायेगी। उसी के बाद महसूल का निर्णय होगा। जब्त की गयी जमीन किसानों को लौटा दी जायेगी, सत्याग्रही कैदियों को छोड़ दिया जायेगा। सारे पटेलों और पटवारियों को फिर से नौकरी पर लगा दिया जायेगा, आदि आदि।

सारे देश में आनंद छा गया। बारडोली के वीर किसानों की जयजयकार होने लगी। वल्लभभाई को गांधी जी ने 'बारडोली का सरदार' कहकर सम्मानित किया। उस दिन से वे सचमुच 'सरदार' बन गये। सारे भारत के नेता बन गये। लेकिन उनकी विनम्रता वैसी ही थी। बोले, ''बापू के संदेश को टूटे-फूटे रूप में भी देश की जनता के पास पहुंचाने वाले कितने कम लोग हैं। वैसे हम क्या हैं। हमने किया ही क्या है। बापू ने बिना कारण ही हमें इतना चढ़ा दिया है।''

परिजनों के बीच

जो व्यक्ति अपने आपको देश के लिए समर्पित कर देते हैं उनके परिवार की सीमाएं भी असीम हो जाती हैं। सरदार वकालत करते हुए तीस साल की आयु में विधुर हो चुके थे। तब उनके एक पुत्री (मणिबेन) और एक पुत्र (डाह्याभाई) था। पुत्र तो पैरों भी नहीं चल सकता था। फिर भी दूसरा विवाह करने की बात उन्होंने नहीं सोची। पर दूसरे लोगों को कौन रोक सकता है। एक मजिस्ट्रेट उन पर बहुत जोर डाल रहे थे। एक दिन विनोद-विनोद में वे बोले, ''जीवन के संबंध कोई एकाएक बंधते हैं क्या? दस-पंद्रह दिन के अच्छे संपर्क के बाद ही कोई निर्णय हो सकता है।''

मजिस्ट्रेट ने इस बात को गंभीरता से लिया और अपनी लड़की को गोधरा बुला भेजा पर वल्लभभाई तो पूर्व योजना के अनुसार बैरिस्टर बनने इंग्लैंड रवाना हो चुके थे।

वे पांच भाई थे पर प्रसिद्ध दो ही हुए विट्ठलभाई और वल्लभभाई। दोनों में गहरा मतभेद था। राजनीति के मैदान में दोनों खूब लड़ते थे लेकिन घर में भाई भाई थे। एक दूसरे का बहुत आदर करते थे। विट्ठलभाई के बैरिस्टर बनने विलायत जाने के बाद उसकी पत्नी सरदार के पास रहीं। वे तेज स्वभाव की थीं। सरदार की पत्नी से उनकी नहीं बनती थी। तब सरदार ने अपनी पत्नी को मायके भेज दिया। बड़े भाई की पत्नी से एक शब्द नहीं कहा।

विट्ठलभाई बहुत जल्दी सेवा कार्य में पड़ गये, इसलिए उनके परिवार के खर्च का बोझ वल्लभभाई ही उठाते थे। जब भी बड़े भाई सरदार के पास आते, सरदार उनके बूट के फीते खोलकर उनका स्वागत करते। उनका बिस्तर बिछाते और जब वे लौटते तो खर्चे के लिए उनकी जेब नोटों से भर देते। दोनों में से कभी कोई एक शब्द भी नहीं बोलता। लेकिन यह मौन आत्मीयता तो सहस्त्रों जिह्वाओं से बोलती थी।

बड़े पटेल जितने लड़ाकू थे, उतने ही मजाकिया भी थे। कभी-कभी भयानक मजाक करते। लोग उनके बैरी तक बन जाते। एक बार वह सरदार के पास ठहरे हुए थे। कुछ मित्र मिलने आ गये। बातें चल पड़ीं। इसी बीच सरदार पाखाने चले गये। बड़े पटेल ने देखा, चुपचाप उठे और बाहर से पाखाने की सांकल लगा दी। फिर मित्रों से बोले, ''ये हैं आप लोगों के सरदार। स्वराज मांगते हैं। पाखाने की सांकल खोलकर

बाहर आ जायें तो जानें।''

आधा घंटा बीत गया। बड़े पटेल मित्रों से बात करते रहे। सरदार भीतर बैठे रहे। एक बार सांकल खटखटायी तक नहीं। आखिर बड़े पटेल उठे और चुपचाप सांकल खोल आये। सरदार उसी तरह चुपचाप बाहर आये और काम में लग गये, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

उनकी बेटी मणिबेन ने विवाह नहीं किया। वे पूर्ण रूप से पिता के प्रति समर्पित हो गयीं। उनके सार्वजनिक जीवन में सदा उनकी ढाल, उनकी नर्स, उनकी मां बनकर उनके साथ रहीं। इतिहास में ऐसे उदाहरण विरल हैं। वल्लभभाई बड़े से बड़े कष्ट को भी स्वर नहीं देते थे। पर मणिबेन उनके बिना बोले ही सब कुछ समझ लेती थीं। वे स्वयं भी कम बोलती थीं, पर मन की भाषा संप्रेषणीयता की दृष्टि से सबसे अधिक सशक्त और स्पष्ट होती है, इसीलिए वे यथासंभव उन्हें अधिक से अधिक आराम पहुंचाने की चेष्टा करती थीं। इसके लिए उन्हें आने वालों के प्रति कठोर भी होना पड़ता था। पिता की सेवा में बाधा डालने वाले किसी भी व्यक्ति को वे सहन नहीं करती थीं। सरदार देश के लिए जीते थे। मणिबेन उनके लिए।

एक बार उनकी थेगली लगी सफेद खद्दर की साड़ी देखकर श्री महावीर त्यागी ने मणिबेन से पूछा, ''सरदार से मिलने राजा-महाराजा और देश-विदेशों के लोग आते रहते हैं। तुम ऐसी साड़ी क्यों पहनती हो? इतने बड़े बाप की बेटी को देखकर लोग क्या कहते होंगे?''

मणिबेन ने कहा, ''सरदार की सेवा से जो समय बचता है उसमें चर्खा कातती हूं। जो सूत बनता है वह सरदार के कपड़ों के लायक मुश्किल से तैयार हो पाता है। उसमें उनके नये कपड़े बन जाते हैं और मैं उनकी पुरानी धोतियां सी कर अपना काम चला लेती हूं।''

सरदार के लिखे कुछ पत्रों से, जो उन्होंने अपने जेल प्रवास से, समय-समय पर मणिबेन और डाह्याभाई को लिखे, उनके वत्सल-हृदय का पता लगता है। डाह्याभाई भी उनकी तरह विधुर हो गये थे। उनके विवाह के लिए प्रस्ताव आते थे। तब मणिबेन को उन्होंने लिखा, ''उन्हें ताजा घाव लगा है जिसे भरने में समय लगेगा। एक दो वर्ष बाद उनकी इच्छा फिर विवाह करने की हो तो भले कर लें और न करना ही हो तो अच्छा है। इस काम में किसी की सलाह काम नहीं देती और किसी को सलाह देनी भी नहीं चाहिए।''

डाह्याभाई को लिखे एक पत्र में वे कितने स्नेह से उन्हें समझाते हैं–

''... तुम दफ्तर में जो पत्र लिखते हो उनमें भाषा उग्र और सामने वाले को बुरी लगने वाली होती है। दफ्तर में किसी के साथ हमारी जबान या कलम के कारण विरोध हो या किसी को दुख हो, यह कभी अच्छा नहीं माना जा सकता। तुम्हारे मकान मालिक ने मकान खाली करने के लिए तुम पर दावा किया वह हमें शोभा नहीं

देगा। तुम्हारा स्वभाव ऐसा नहीं है, फिर भी ऐसा क्यों हो जाता है यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं मानता था कि तुमने सबका प्रेम संपादन कर लिया है इसलिए बहुत खुश हुआ करता था। लेकिन ये बातें सुनकर मुझे जरा आश्चर्य हुआ। किसी को बुरी लगने वाली बात लिख दी हो तो उससे क्षमा मांगकर उसके साथ घुलमिल जाना और उसका प्रेम संपादन करना। मेरा स्वभाव भी किसी समय सख्त था परंतु मुझे इस बारे में बड़ा पछतावा हुआ है।''

मणिबेन को लिखा एक और पत्र—

''... अब तुम थोड़े समय डाह्याभाई के साथ रह सकोगी। दोनों भाई-बहन कहीं न कहीं समय और एकांत निकालकर जी भर कर बातें कर लेना। बार-बार समय नहीं मिलता। दिलों की सफाई करनी हो तो कर लेना, परंतु कोई चिंता न करना। बहुत बड़ा कुटुंब कबीला होने से सुख मिलता है ऐसी बात नहीं। थोड़े लोग हों तो संभव है सुख से रह सकें और थोड़ा दुख भुगतना पड़े। और सुख-दुख तो मन के कारण होते हैं।''

मणिबेन को एक पत्र में लिखा—

''... अपना स्वास्थ्य सम्हालना। बरसात आ गयी है इसलिए चलना फिरना कम हो गया होगा। बरामदे में घूमने की स्थिति है वहां, नहीं तो बैरक में भी एक दो घंटे जरूर घूमना चाहिए ... पैर में अब आराम हो गया होगा। मन की शक्ति प्राप्त करना तो तुम्हारे अपने ही हाथ में है... चिंता ईश्वर को सौंप दो। भूतकाल को भूलकर भविष्य को सुधार लेने में ही बुद्धिमानी होगी...।''

विलायत से लिखे उनके पत्रों में परिवार के प्रति उनकी ममता कम नहीं प्रकट होती। बड़े भाई को लिखा एक पत्र देखिये—

''चि. काशीभाई बिलकुल पत्र नहीं लिखते और घर का कोई समाचार नहीं मिलता इसलिए आप बार-बार पत्र लिखते रहिये।

मेरी परीक्षा हो गयी। उसमें मैं पहले नंबर से पास हुआ हूं। पूज्य पिताजी और माताजी को मेरा नमस्कार कहिये... ईश्वर करेंगे तो दो साल पूरे होने में देर नहीं लगेगी और मुझे आप सबके दर्शनों का सौभाग्य मिलेगा।''

पिताजी से उनके संबंध कैसे थे, एक घटना का वर्णन करना काफी होगा—

एक वृद्ध परंतु तंदुरुस्त और कसे हुए शरीर वाले सशक्त पुरुष सीढ़ियां चढ़ कर ऊपर आये। वे बिलकुल सफेद पोशाक पहने हुए थे। धोती, कुर्ता, खेस और पगड़ी सभी सफेद थे। सभी कपड़े दूध की तरह उजले थे।

इन्हें देखते ही मुंह में से हुक्के की नली निकालकर वल्लभभाई खड़े हो गये और बोले, ''पिताजी, आप कहां से?''

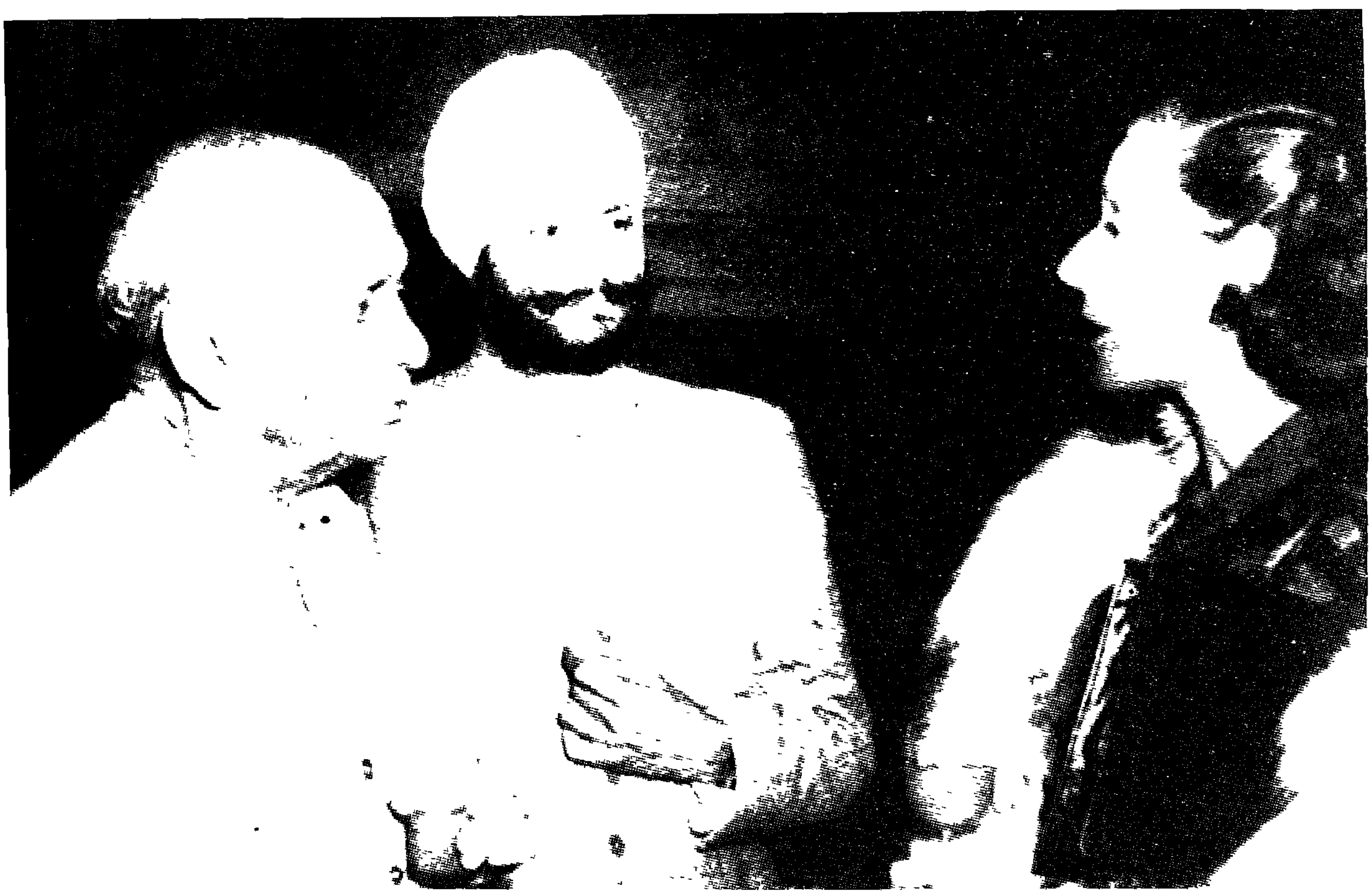
''भाई, तुमसे काम पड़ा है इसलिए तो आया हूं।''

''परंतु मुझे क्यों नहीं कहलवा दिया? मैं करमसद आ जाता।''

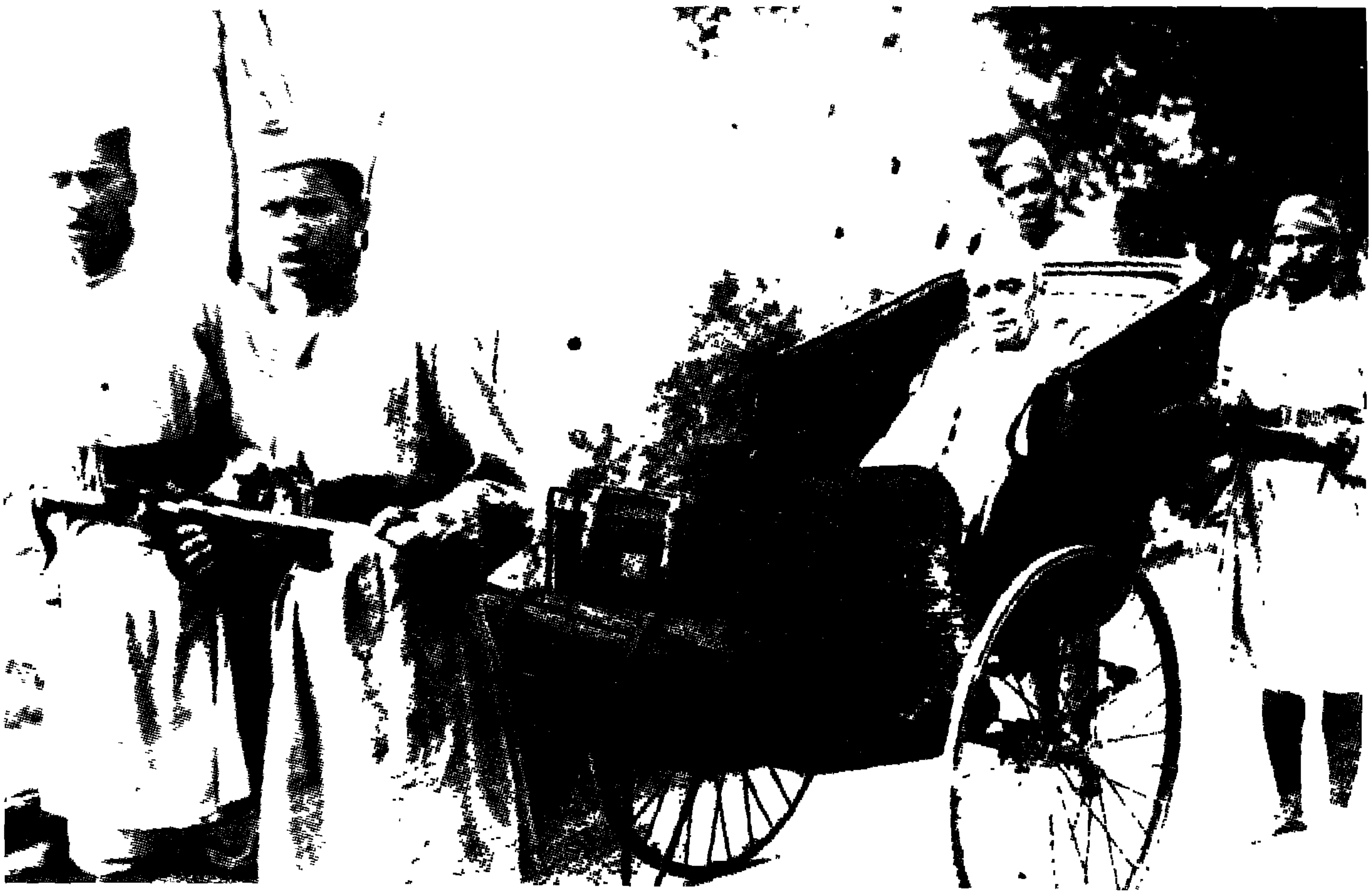
''परंतु काम वोरसद में है इसलिए तुम्हें वहां बुलाकर क्या करता?''



मौलाना अबुल कलाम आजाद, सरदार पटेल और राजेन्द्र प्रसाद बातचीत करते हुए



सरदार पटेल, सरदार बलदेव सिंह और लेडी माऊंटबेटन



1940 में शिमला में आयोजित नेताओं के सम्मेलन में भाग लेने के लिए रिक्शे पर जाते हुए सरदार पटेल



जनरल करिअप्पा से हाथ मिलाते हुए सरदार पटेल



सरदार पटेल एक आयोजन में किसी महिला से बात करते हुए। चित्र में मणिबेन पटेल और लेडी माऊंटबेटन भी दिखाई दे रही हैं



सी. राजगोपालाचारी और सरदार पटेल



जवाहरलाल नेहरू के साथ एक आम सभा को संबोधित करते हुए सरदार पटेल



अबुल कलाम आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सी. राजगोपालाचारी, सरदार वल्लभभाई पटेल और अन्य का एक समूह चित्र



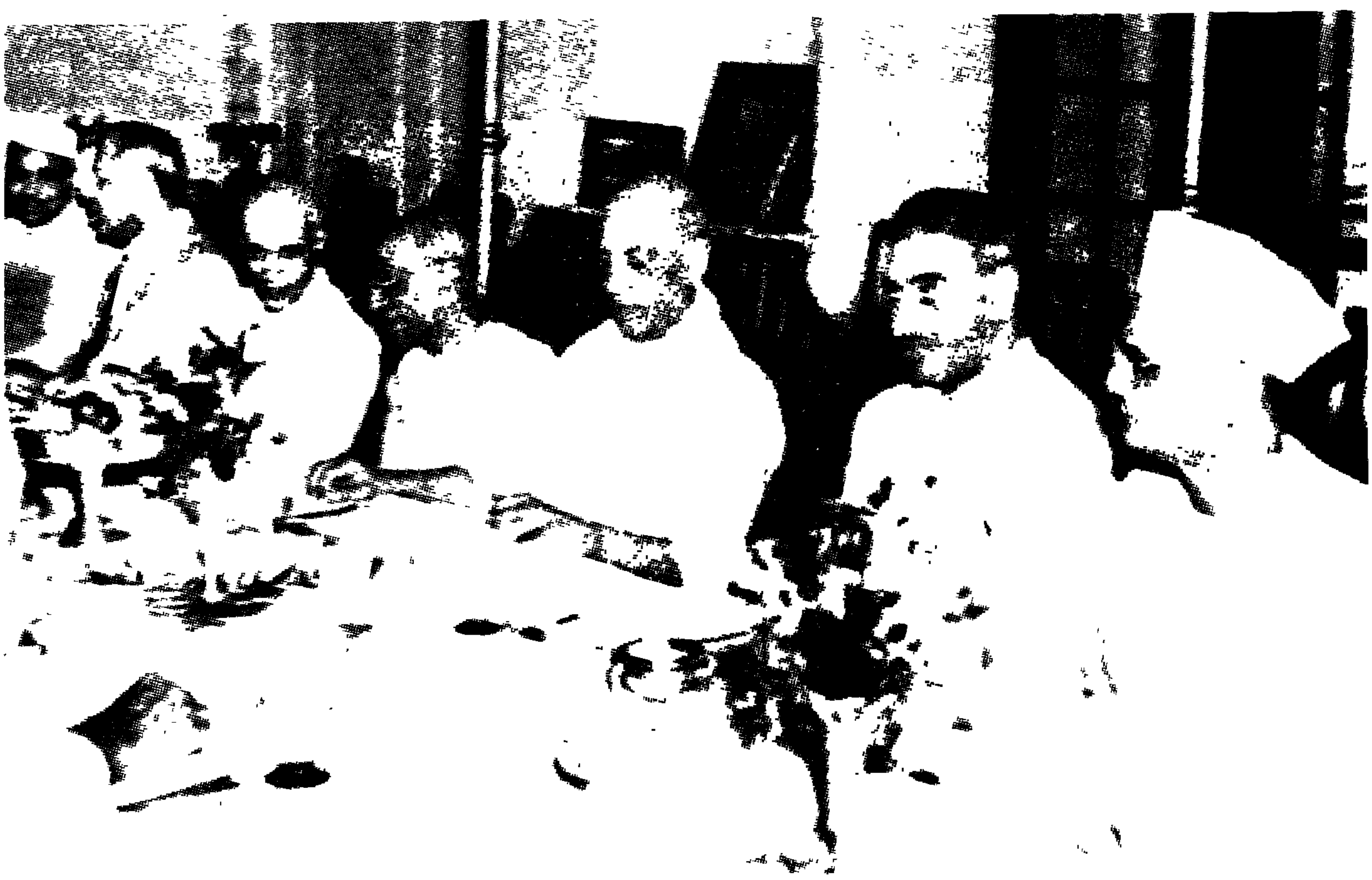
सरदार पटेल एवं राजेन्द्र प्रसाद



सरदार पटेल के 74वें जन्म दिन पर उनकी बेटी तथा उन्हें भेंट किया गया सोने का अशोक स्तंभ स्मृति चिह्न



जाम साहेब सौराष्ट्र के साथ सलामी गारद का निरीक्षण करते हुए सरदार पटेल



सरदार पटेल– नेहरू जी व अन्य लोगों के साथ



इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वार्षिक समारोह (27.11.1948) में सरदार पटेल



सी. राजगोपालाचारी, राजकुमारी अमृत कौर व अन्य के साथ सरदार पटेल



सरदार पटेल के शव को स्नेहभरी विदाई देता जन-मानस



सरदार पटेल की अस्थियों को प्रवाहित करने से पूर्व डा. राजेन्द्र प्रसाद अस्थि कलश को सलामी गारद के लिए ले जाते हुए

"ऐसा क्या काम है?"

"सारे जिले में तुम्हारी धाक है और हमारे महाराज पर वारंट निकले, क्या यह ठीक है? तुम्हारे बैठे महाराज को पुलिस पकड़ सकती है?"

"महाराज पर वारंट, यह कैसे? वे तो पुरुषोत्तम भगवान के अवतार कहलाते हैं। हम सबको संसार सागर से पार उतारने वाले हैं। उन्हें पकड़ने वाला कौन हो सकता है?"

"इस वक्त तुम अपनी दिल्लगी रहने दो। मैंने पक्के तौर पर सुना है कि बड़ताल और बोचासण के मंदिरों के कब्जे के बारे में झगड़ा हुआ है और उसमें हमारे महाराज पर भी वारंट निकले हैं। तुम्हें वह वारंट रद्द कराना ही पड़ेगा। पुलिस महाराज को पकड़ ले तब तो मेरे साथ तुम्हारी भी इज्जत जायेगी।"

"हमारी इज्जत क्यों जायेगी? जो ऐसे करम करेगा उसकी जायेगी परंतु मैं जांच करूंगा। यों ही वारंट थोड़े निकलते हैं। जो कुछ मुझसे हो सकेगा करूंगा।"

बाद में जरा गंभीर होकर परंतु नम्रता से पिताजी को बताया, "अब आप इन साधुओं को छोड़ दीजिये। जो इस तरह प्रपंच करते हैं, झगड़े करके अदालतों में जाते हैं और जो इस लोक में अपनी रक्षा नहीं कर सकते, वे परलोक में हमें क्या तारेंगे? हमारा क्या उद्धार करेंगे?"

"यह सब झंझट हम क्यों करें? परंतु देखो, तुम्हें इतना ध्यान रखना है कि महाराज पर वारंट निकला हो तो वह रद्द होना ही चाहिए।"

यह कहकर पिताजी दफ्तर से चले गये।

उनके आग्रह के कारण सरदार ने यह केस हाथ में लिया और समझौता करा कर दोनों पक्षों के अभियुक्तों को छुड़ा दिया।[1]

और मां की बात तो रह ही गई। कितना प्यार करती थी मां अपने बेटे को, कितना जानती थी उसे, इसका सुंदर वर्णन श्री महादेव देसाई ने दिया है।[2]

एक बड़े कमरे में छोटा-सा दिया जल रहा था। एक किनारे पर तीन बच्चे (श्री काशीभाई के) खूब ओढ़कर साथ सो रहे थे और दूसरे किनारे पर अंदर के कमरे के दरवाजे के सामने कोई 80 वर्ष की लकड़ी जैसे सूखे शरीर की एक बुढ़िया बैठी थी। दीवार के सहारे गादी-तकिया लगा हुआ था और सामने छोटी-सी किताबों की अलमारी पर कानून की थोड़ी-सी पुस्तकें पड़ी हुई थीं।

कोई 50 वर्ष का बेटा सीढ़ियां चढ़ कर "क्यों मां" कहकर तकिये के सहारे बैठ गया। बुढ़िया की आंखों से बहुत दीखता नहीं था। "कौन है भाई? भाई? आओ, बच्चे अच्छे हैं?" कहकर बुढ़िया ने स्वागत किया।

बेटे ने जवाब दिया, "हां, सब अच्छे हैं।"

---

1. सरदार वल्लभभाई, प्रथम भाग: नरहरि परीख—पृष्ठ 3

2. वही—पृष्ठ 366

"गांधी जी छूट गये। बड़ा अच्छा हुआ। मुझे तो रोज खयाल हुआ करता था कि उन्हें कैसे छुड़ाया जाये। कैसे छुड़ाया जाये? परंतु सरकार ने छोड़ दिया।"

"हां।"

"यहां वे कब आयेंगे?"

"अभी तो कुछ दिन अस्पताल रहना पड़ेगा", बेटे ने थोड़े में निपटा दिया।

"भीतर रग पर फोड़ा हो गया था, इसलिए उसे चीरा लगाना पड़ा, क्यों? बहुत दुख पाया होगा?"

"हां, तो।"

"... भाई आजकल कहां हैं?"

"दिल्ली में सरकार के साथ लड़ रहे हैं। जन्म का ही फसादी स्वभाव कहीं जाता है?"

बुढ़िया ने हां या ना में सिर नहीं हिलाया। यह समझकर कि कुछ अन्याय हो रहा होगा चुप ही बैठी रही। फिर थोड़ी देर ठहरकर बोली :

"यहां रहोगे?"

"नहीं, कल जाना है।"

"देखो तो, सबका ठीक हो गया। यहां भी लोगों का ठीक हो गया। गांधी जी भी छूट गये। अब घर में भी ..."

वाक्य पूरा होने से पहले ही बेटे ने वह वाक्य पकड़ लिया :

"घर में भी ठीक करो। यानी... बहन के लिए अब तलाश करो, यही न?"

"सो तो है ही। मेरी अब भगवान से कोई मांग नहीं है। बस, यह एक काम हो जाये तो सब हो गया।"

"जो भाग्य में लिखा होगा वही होगा।"

भाग्य में लिखा न मानने वाले बेटे का ढोंग बुढ़िया ने समझ लिया। इसलिए तुरंत बोली :

"वह तो होगा ही। परंतु हमारे दलाल बने बिना भी क्या काम चल सकता है?"

बेटा चुप रहा। यह समझकर कि यह विषय बेटे को पसंद नहीं है, बुढ़िया ने फिर बात पलट दी। "तुम्हारे साथ बड़ी दाढ़ी वाले बुजुर्ग [1] आया करते थे वे नहीं आये?"

"नहीं, घर पर रह गये।"

बेटे ने कहने को तो कह दिया कि जो भाग्य में लिखा होगा वही होगा, परंतु उनके मन में विचार तो होने ही लगा था। वे बुढ़िया मां के सवालों के जवाब यांत्रिक ढंग से देते जा रहे थे किंतु दिल में तो मां की पूछी हुई बात पर ही विचार कर रहे थे।

बुढ़िया मां फिर बोली, "...बहन तो आकर चली गयी। परंतु ...भाई इस बार

1. अब्बास साहब तैयबजी

बहुत दिन रहा। कैसी मीठी वाणी। दिन भर बोलता ही रहता। तमाम दिन कल्लोल किया करता।''

इतनी भूमिका बनाकर बुढ़िया मां ने बेटे का मन फिर पहले वाली बात सुनने को तैयार कर लिया।

''खैर...भाई की तो कोई चिंता नहीं। परंतु ...बहन की चिंता रहा करती है। भगवान ने मुझे इतने समय तक जिलाया है, सो शायद इसीलिए तो नहीं जिलाया है? ऐसा लगता है कि...बहन को ब्याह देने के बाद मरूंगी। इसके सिवाय अब और कोई तृष्णा नहीं रह गयी है।''

बेटा चुप ही रहा। इसलिए बुढ़िया मां ने फिर बात बदलने का ढोंग किया।

''दोनों पढ़ने जाते हैं क्या?''

''हां।''

''दोनों की परीक्षा कब है?''

...भाई सिटपिटाये। आसपास बैठे सब हंसने लगे। उन्हें पता नहीं था कि उनके बच्चे कौन-सी परीक्षा में बैठेंगे। इसलिए बुढ़िया मां ने व्यंग्य किया :

''सारी दुनिया का पता रखते हो और अपने बच्चों का पता ही नहीं?''

''बच्चे अब बड़े हो गये हैं। अपनी देखभाल खुद कर लें।''

सामने एक लड़का बैठा था। उसे संबोधन कर बुढ़िया मां बोली, ''देख रे, सुन ले। काका क्या कह रहे हैं? तुम्हें अपनी देखभाल खुद कर लेनी चाहिए।''

मैंने (महादेव भाई) कहा, ''अब तो अहमदाबाद चलकर रहिये ना।''

''रहूं तो सही, भाई। परंतु वे छोटे-छोटे (काशीभाई के बच्चे) जो सो रहे हैं उन्हें कौन सम्हाले?''

अस्सी वर्ष की बुढ़िया उन मातृहीन बालकों को सम्हालती थी और बेटे को भोजन बनाकर खिलाती थी।

अंत में सब उठ गये। बेटे ने कहा : ''तो उठें।''

इस पर बुढ़िया बोली : ''... भाई से कहना। वहीं कहीं देख रखे।''

''क्यों, उनसे क्यों कहा जाये?''

''तुम्हें तो इतना भी पता नहीं कि बच्चे क्या पढ़ रहे हैं, फिर लड़की के लिए वर क्या ढूंढ़ोगे?''

सब हंसते-हंसते नीचे उतर आये। थोड़ी ही देर बाद तो बुढ़िया के बेटे को हजारों की सभा में भाषण देना था।

स्वाधीनता संग्राम के सेनानी

हमारे स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में सन् 1929 का वर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस वर्ष राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे पं. जवाहरलाल नेहरू। यद्यपि अधिकांश प्रांत गांधी जी को अध्यक्ष बनाने के पक्ष में थे पर गांधी जी चाहते थे कि अब देश की बागडोर नौजवान सम्हालें। इसीलिए उन्होंने जवाहरलाल जी के पक्ष में अपनी सारी शक्ति लगा दी।

इस चुनाव से भारत में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। 31 दिसंबर, 1929 की रात के बारह बजे रावी के तट पर श्री जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष के पद से संपूर्ण देश के लिए पूर्ण स्वतंत्रता के ध्येय की घोषणा की और स्वतंत्रता का झंडा फहराया।

इसके बाद घटनायें बड़ी तेजी से घटीं। सन् 1928 में जो साइमन कमीशन भारत आया था और जिसका समग्र भारत ने बहिष्कार किया था उसी की सिफारिश के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने भारत को फेडरल राज्य-शासन देने का ध्येय स्वीकार किया और लंदन में सभी दलों की गोलमेज कांफ्रेंस बुलाने की घोषणा की।

गांधी जी ब्रिटिश सरकार की चाल समझते थे। उन्होंने इस घोषणा का स्वागत करते हुए अपनी सुप्रसिद्ध 11 शर्तें पेश कर दीं। पर सरकार उन्हें स्वीकार ही नहीं कर सकती थी। उनमें नमक कर रद्द करने की शर्त भी थी। इसी प्रश्न को लेकर गांधी जी ने नमक-सत्याग्रह करने का फैसला किया। वे 12 मार्च, 1930 को अपने सुप्रसिद्ध डांडी कूच पर रवाना हुए।

इस कूच की सारी योजना सरदार की देखरेख में बनी थी। इधर गांधी जी कूच की तैयारी में लगे, उधर सरदार गुजरात में घूमने लगे। अपने प्रथम भाषण में उन्होंने कहा—

''अब एक ऐसा धर्मयुद्ध आरंभ होता है जैसा जगत ने पहले कभी नहीं देखा होगा। यह ऐसा युद्ध है जिसमें एक ओर समग्र सात्विक शक्तियों का, धार्मिक शास्त्रों का उपयोग होगा, दूसरी ओर आसुरी शक्तियों का, आसुरी शस्त्रों का उपयोग होगा। रावण के जमाने से जगत में कभी न देखी गयी हो ऐसी राक्षसी सामग्री वाली राज्य सत्ता आसुरी शक्ति का उपयोग करने की धमकी दे रही है। इन दो सत्ताओं के बीच

संग्राम होने वाला है। इस संग्राम में आपका क्या भाग रहेगा और आप किसका पक्ष लेंगे इसका निर्णय आपको करना है।

''महात्मा जी दुनिया के श्रेष्ठ पुरुष माने जाते हैं। उनकी कोटि का कोई दूसरा पुरुष इस संसार में नहीं है। उन्होंने आपको कुछ सिखाया है? ...दुनिया आपसे पूछेगी कि आपने क्या किया है? ... किसानों से और आपसे पूछता हूं कि ईश्वर में आपकी श्रद्धा है? खुदा में आपका विश्वास है? जो पैदा हुए हैं वे मरते भी हैं—यह क्या आप जानते हैं? मृत्यु से कोई बचने वाला नहीं है। नामर्द की मौत मरने की बजाय आप बहादुर और इज्ज्तदार की मौत मरना सीखिये। तोपों के धड़ाके हों, हवाई जहाजों से बम का विस्फोट हो और तड़ातड़ आदमी मरें, तब कहीं इतिहास के पृष्ठों पर नाम चढ़ता है। ऐसा दिन हमारे यहां कब आयेगा? जब आये तब कोई भी गुजराती सरकार का साथ न दे। साबरमती के संत की बात हम थोड़ी-सी समझे हों, तो यह सब करना आसान है। ऐसा समझिये कि यह धर्मयुद्ध बैकुंठ का विमान और निमंत्रण लेकर आया है। जिन्हें मृत्यु का भय हो उनका जीना व्यर्थ है। उनके लिए यह प्रसंग नहीं है।

''सारे गुजरातियों को मैं यहां से सुनाना चाहता हूं कि जिन्हें मृत्यु का भय लगता हो वे तीर्थयात्रा करने निकल जायें। वे अपनी जायदाद की व्यवस्था करके चले जायें। जिनके पास पैसे हों वे विदेश चले जायें। यदि आप सच्चे गुजराती हैं तो, ऐसा कोई काम न करें जो लज्जित करने वाला हो। सिर नीचा करके कभी न घूमें। दरवाजे बंद करके घर में न घुसे रहें। थोड़े ही दिन बाकी हैं। पंद्रह वर्ष से हमें जो तालीम और शिक्षा मिली है उसकी अब परीक्षा होने वाली है।

''गुजरात की जनता इतिहास में स्वतंत्रता का प्रथम पृष्ठ लिख रही है। ईश्वर उसे शक्ति प्रदान करे। ईश्वर आप सबका कल्याण करे।''

उनके इस तरह के भाषण का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। सरकार घबरा गयी। उसने 7 मार्च, 1930 को ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उसी दिन तीन महीने की सख्त कैद और 500 रुपये जुर्माने अथवा तीन सप्ताह की कैद की सजा भी सुना दी। डांडी-कूच पांच दिन बाद 12 तारीख को शुरू होने वाला था। गांधी जी ने इतना ही कहा, ''सरकार ने वल्लभभाई को पकड़ने की जल्दी करके मामला बिगाड़ लिया।''

जब वे छूटे तो सारा देश जेलखाना बना हुआ था। वे भी उस अनोखे संग्राम में कूद पड़े। पं. मोतीलाल नेहरू के बाद वे राष्ट्रपति बने और 13 जून, 1930 को फिर गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें फिर 3 माह की सजा हुई। नमक सत्याग्रह के साथ-साथ गुजरात में करबंदी आंदोलन चल रहा था। समझौते की बातें चल रही थीं। श्री तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर यरवडा जेल में गांधी जी से कई बार मिल चुके थे।

इसी समय सरदार बाहर आये। सरकार चाहती थी कि सरदार भाषण न दें पर वे कब मानने वाले थे। इसीलिए दिसंबर के दूसरे सप्ताह में वे फिर गिरफ्तार कर

लिये गये। इस बार उन्हें नौ महीने की सजा मिली।

उस समय इंग्लैड में पहली गोलमेज कांफ्रेस हो रही थी। भारत में नरम दल के नेता कांग्रेसी नेताओं को समझा रहे थे। परिणाम यह हुआ कि 25 जनवरी, 1931 को 26 बड़े नेताओं को जेल से छोड़ दिया गया। उनमें सरदार पटेल भी थे। इस बातचीत का अंत हुआ सुप्रसिद्ध 'गांधी-इरविन पैक्ट' के रूप में। लेकिन उसके कुछ दिन बाद लार्ड इर्विन चले गये और उनके स्थान पर आये लार्ड विलिंग्डन। वे सत्तावादी थे। इसलिए वह समझौता देर तक नहीं चला। गांधी जी दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में भाग लेने इंग्लैंड गये अवश्य, पर कुछ मिला नहीं।

इस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन मार्च में कराची में हुआ था। अध्यक्ष थे हमारे सरदार। उनका भाषण सभी अध्यक्षों के भाषणों से छोटा था। किसान भाषण नहीं देता, काम करता है। तभी वे कह सकते थे, "मैंने जो थोड़ा बहुत काम किया उसके लिए आप मुझे सम्मान दे रहे हैं, ऐसा नहीं मानता परंतु गुजरात ने पिछले वर्षों में जो बलिदान दिये हैं उनका आप सम्मान कर रहे हैं।" हमारे सरदार की अध्यक्षता में ही कांग्रेस ने अपना सुप्रसिद्ध आर्थिक कार्यक्रम घोषित किया। इस अधिवेशन में मुख्यतया दो प्रस्ताव पारित हुए। एक सरकार के साथ हुए समझौते के बारे में। दूसरा प्रस्ताव बहुत महत्वपूर्ण था। इसमें स्पष्ट किया गया था कि स्वराज प्राप्त होने पर जनता के मूलभूत अधिकार क्या होंगे।

जिस समय गांधी जी इंग्लैंड में थे भारत में दमन का बोलबाला था। सीमा प्रांत में खुदाई खिदमतगारों पर नाना प्रकार के अत्याचार किये जा रहे थे। गुजरात में सरकार बारडोली समझौते की शर्तों का पालन नहीं कर रही थी। सरदार यह सब नहीं सह सकते थे। उन्होंने गांधी जी को पत्र लिखकर शीघ्र लौट आने की सलाह दी।

गांधी जी दिसंबर में लौट आये। उन्होंने सारी स्थिति का अध्ययन करके वायसराय से मिलने की इच्छा प्रकट की परंतु वे टस से मस न हुए। उन्होंने जवाहरलाल जी को पहले ही गिरफ्तार कर लिया था। 4 जनवरी, 1932 को गांधी जी व सरदार को भी बंदी बना लिया। वे दोनों सोलह महीने तक साथ-साथ कारागार में रहे।

महादेव भाई ने उन दिनों के कुछ बोलते चित्र अपनी डायरी में अंकित किये हैं। वे चाय पीते थे। उन्होंने सरदार से पूछा, "क्या आपने चाय पीना बंद कर दिया है?"

सरदार बोले, "यहां बापू के साथ अब क्या चाय पियें। मैंने तो तय कर लिया है कि वे जो खायें सो खाना। चावल छोड़ दिया और साग उबालने का निश्चय किया और दो बार दूध रोटी खाने का। बापू भी रोटी खाते हैं।"

सेवा की यह बात थी कि बापू के लिए सोडा बनाना, खजूर साफ करना, दातुन तैयार करना उन्होंने स्वयं अपने जिम्मे ले लिया था। इतने पर भी संतोष नहीं था। हंसते-हंसते कहने लगे, "मुझे क्या पता था कि यहां साथ रहने वाले हैं। पता होता

तो काका से पूछ लेता कि बापू का क्या क्या काम करना होता है। बापू तो कुछ कहते नहीं, इसलिए मालूम नहीं पड़ता।''

एक दिन बापू पौने चार के स्थान पर तीन बजे उठ बैठे। प्रार्थना आदि कर लेने के बाद उन्होंने सरदार से कहा, ''आप बाकी की नींद पूरी कर लें।''

सरदार बोले, ''नहीं, हम तो आपके पीछे-पीछे चलेंगे।''

यह पीछे चलना केवल शाब्दिक नहीं था। सरदार के रोम-रोम से यही ध्वनि निकला करती थी। उस दिन किसी प्रसंग में बापू बोले, ''किसी न किसी दिन तो किसी के कंधे पर चढ़ना पड़ेगा।'' सरदार ने कहा, ''नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। देश को मझदार में छोड़कर आप कैसे जा सकते हैं। एक दफा जहाज को किनारे पर पहुंचा दीजिये, फिर जहां जाना हो चले जाना। मैं साथ चलूंगा।''

कोई यह न समझे कि बापू इतनी भक्ति देखकर उनसे कोई काम नहीं लेते थे। उन्हें एक खत लिखवाना था। महादेवभाई कात रहे थे। बापू ने कहा, ''इसका कातना तो हरगिज नहीं छुड़वाया जा सकता।'' इस पर सरदार बोले, ''मुझे लिखवाइये।'' बापू ने कहा, ''भले ही लिखिये, आप पर मुझे दया आयेगी यह न समझिये।'' फिर पत्र ही नहीं लिखवाया, शाम को एक लंबे पत्र की नकल भी करवायी। एक घंटा लगा। महादेवभाई ने टोका तो बापू बोले, ''थक जायेंगे, तो छोड़ देंगे।'' पर सरदार बापू का काम करते थके कहां?

वे दातुन कूटने और बादाम पीसने का ही काम नहीं करते थे, लिफाफे भी बनाते थे। एक दिन उन्होंने एक पुस्तक की जिल्द भी बांधी। उनकी कार्यक्षमता की प्रशंसा स्वयं बापू ने की है। एक पत्र में लिखा, ''लिफाफों में तो कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता। लिफाफे वे नापे बिना बनाते हैं। और अंदाज से काटते हैं, मगर बराबर के निकलते हैं, और फिर भी ऐसा नहीं लगता कि इसमें बहुत समय लगता हो। उनकी व्यवस्था आश्चर्यजनक है। जो कुछ करना हो, उसे याद रखने के लिए छोड़ते ही नहीं। जैसे आया वैसे ही कर डाला। कातना जब से शुरू किया है तब से बराबर समय पर कातते हैं। इस तरह सूत में और गति में रोज सुधार होता जा रहा है। हाथ में लिया हुआ काम भूल जाने की बात तो शायद ही होती हो।''

परंतु इतनी प्रशंसा करने के बाद भी बापू उन्हें डांटने से नहीं चूकते थे। एक दिन सवेरे नौ बजे सोडा और नींबू देते समय बापू ने सरदार से कहा, ''क्या आपको नर्सिंग का एक कोर्स देने की जरूरत नहीं है? देखिये तो आपने चम्मच ऊपर से पकड़ने की बजाय ठेठ मुंह के पास पकड़ा है। यह सारा चम्मच गिलास में जायेगा। इसलिए उस जगह उसको हाथ में छूना नहीं चाहिये और जिस रूमाल से उसका मुंह पोंछा जाता है, उसीसे आपने इस चम्मच को साफ किया। यह भी नहीं होना चाहिए, पीकर गिलास यों ही औंधे नहीं रख देने चाहिए। अगर आप इस आशा से औंधे रखते हो कि धुल जाते होंगे तो मैं आपसे कहता हूं कि ये अक्सर नहीं धोये जाते।''

पर इसका यह अर्थ नहीं था कि नाराज होने का अधिकार केवल बापू का ही था, सरदार भी मौका नहीं चूकते थे, पर उसके मूल में सदा बापू के प्रति प्रेम रहता था।

एक बार बापू ने सोने के लिए नारियल की रस्सी की खाट मंगवायी। उसे देखकर सरदार चमक उठे। बोले, "क्या कहा? इस पर भी सोते होंगे? गद्दे में नारियल के बाल क्या कम हैं जो नारियल की रस्सी पर सोना है?"

बापू : लेकिन देखिये तो, यह खाट कितनी साफ रह सकती है।

सरदार : आप भी खूब हैं, इस पर तो चारों कोनों पर नारियल बांधना बाकी है। ऐसी बदशक्ल खाट से काम नहीं चलेगा। इस पर कल निवाड़ भरवा दूंगा।

बापू : नहीं वल्लभभाई, निवाड़ में धूल भर जाती है, निवाड़ धुलती नहीं, इस पर पानी उंडेला कि साफ।

सरदार : निवाड़ धोबी को दी कि दूसरे दिन धुलकर आयी।

बापू : मगर यह रस्सी निकालनी नहीं पड़ती, यों ही धुल सकती है।

महादेव : हां, बापू। यह तो गरम पानी से धोयी जा सकती है, और इससे खटमल भी नहीं रह सकते।

सरदार : चलो, अब तुमने भी राय दे दी। इस खाट में पिस्सू खटमल इतने होते हैं कि पूछिये नहीं।

बापू : मैं तो इसी पर सोऊंगा। भले ही आप ऐसी न मंगायें। मेरे यहां तो मुझे याद है बचपन में ऐसी खाटें काम में लाते थे। मेरी मां इन पर अदरक छीलती थी।

महादेव : यह क्या है? यह तो मैं नहीं समझा?

बापू : अदरक का अचार डालना होता तो अदरक को चाकू से साफ न करके खाट पर घिसते, जिससे छिलके सब साफ हो जाते।

सरदार : इसी तरह इन मुट्ठी भर हड्डियों पर से चमड़ी उधड़ जायेगी। इसलिए कहता हूं कि निवाड़ लगवा लीजिये।

बापू नहीं माने। पर सरदार की बापू के प्रति ममता इस घटना से स्पष्ट है और साथ ही यह उनकी प्रत्युत्पन्नमति का भी उदाहरण है। प्रत्युत्पन्नमति और कटाक्षमय विनोद तो सरदार की संपत्ति हैं।

किसी गंभीर राजनीतिक चर्चा के दौरान मौलाना आजाद ने कहा, "हां! यह हल तो तसल्लीबख्श है।"

इस पर सरदार बोले, "अब तक मौलाबख्श, अल्लाबख्श और खुदाबख्श का नाम तो सुना था। यह चौथा तसल्लीबख्श कहां से आ गया?"

गांधी जी का विनोद तो लोक प्रसिद्ध है, परंतु सरदार की हास्य-वृत्ति जनता के सामने नहीं आयी। यहां तक कि होली के अवसर पर भंग की तरंग में जब उपाधियां बांटी जाती थीं, तब भी उनके भाग्य में 'हैवी टैंक' जैसी भारी उपाधियां होती थीं।

वैसे भी प्राय: उनका हास्य टैंक से कम भारी नहीं होता था। राजनीतिक दांव पेंच उनकी परिहास-भावना को तीखे व्यंग्य व विषैले चातुर्य में परिवर्तित कर देते थे। इसी कारण जनता उन्हें कटु-व्यंग्यकार तो मानती थी, परंतु उसके लिए यह बात कि, सरदार बालक की तरह हंस सकते थे, आश्चर्यजनक थी। सच यह है कि शरारत से परिहास करने में वे उतने ही कुशल थे, जितने विरोधी को विषैले चातुर्य से पराजित करने में। इसके अतिरिक्त उनके व्यंग्य में, चाहे वह कितना ही कटु क्यों न हो, एक दुबले मनुष्य की दुर्भावना, जिसे उपहास-वृत्ति कहा जा सकता है, नहीं थी। सरदार दूसरों पर हंस सकते थे, तो अपने को भी हंसी का पात्र बना सकते थे। उनकी हास्य वृत्ति बहुत कुछ स्वामी दयानंद सरस्वती के समान थी। उनमें मुक्तहास भी था और क्रूर व्यंग्य भी, पर संवेग का अभाव उनमें कभी नहीं पाया गया। संवेग के अभाव में विनोद को श्मशान की हंसी कहा जा सकता है।

एक बार कुछ व्यक्ति गांधी जी से मिलने आये। मार्ग में सरदार मिल गये। पूछा, "कहां जा रहे हो?"

उन्होंने जवाब दिया, "गांधी जी से मिलने।"

सरदार, "क्यों?"

वे बोले, "ब्रह्मचर्य पर कुछ बातें करनी हैं।"

सरदार, "अरे ब्रह्मचर्य पर गांधी से बात करोगे? उनके चार बेटे हैं। सब विवाहित हैं। खुद उनकी पत्नी जिंदा हैं। वह ब्रह्मचर्य को क्या जानें। ब्रह्मचर्य की बात मुझसे करो। मेरे केवल दो बच्चे हैं। बहुत पहले मेरी पत्नी मर गयी थी, तब से मैंने दूसरी शादी नहीं की। ब्रह्मचारी तो मैं हूं।"

शरारतपूर्ण विनोद का सबसे बड़ा उदाहरण बापू की लंगोटी वाला है। सत्याग्रह सप्ताह शुरू होने वाला था। इसलिए पिंजाई भी शुरू करनी थी। महादेवभाई ने बापू से पूछा, "पींजन की तांत कैसी है? आपसे कितनी बार टूटी है?"

बापू ने उत्तर दिया, "जतन करना आता हो तो कुछ भी न टूटे। शंकरलाल ने मेरे पास से ली कि टूटी। काका ने मुझसे ली कि टूटी, लेकिन मेरी तो कई दिन चलती रही है। यह तो जतन का काम है। देखो तो यह लंगोटी पहने हूं और किसी के पास होती तो कभी की फट जाती।"

वल्लभभाई सुन रहे थे। उसी क्षण बोल उटे, "यह तो ऐसा लगता है कि जैसे पहनते ही न हों और खूंटी पर सम्हाल कर रख छोड़ी हो।"

बापू सुबह शाम नींबू पीते थे। नींबू गरमी में महंगे हो जाते हैं। इसलिए बापू ने सरदार से कहा कि नींबू के स्थान पर इमली का प्रयोग किया जाय। जेल में उसके पेड़ भी बहुत हैं।

बापू की बात पर सरदार हंस पड़े, बोले, "इमली के पानी से हड्डियां गल जाती हैं, बादी हो जाती है।"

गांधी जी ने कहा, ''और जमनालाल जी पीते हैं सो?''

वल्लभभाई बोले, ''जमनालाल जी की हड्डियों तक पहुंचने का इमली के लिए रास्ता ही नहीं।''

एक आलोचक भाई ने बापू को खुली चिट्ठी लिखी। उसके अंत में लिखा, ''आपके जमाने में जीने का दुर्भाग्य प्राप्त करने वाला।'' बापू कहने लगे, ''कहो इसे क्या जवाब दिया जाय।''

वल्लभभाई बोले, ''कहिए कि जहर खा ले।''

बापू, ''नहीं, ऐसा नहीं। यह क्यों न कहें कि मुझे जहर दे दो।''

वल्लभभाई, ''मगर इससे उसके दिन कहां पलटेंगे? आपको जहर दे दे तो आप गये ओर उसे फांसी की सजा मिले, तो उसे भी जाना पड़ेगा। तब भी आप के ही साथ जन्म लेने का भाग्य में बदा रहेगा। इससे तो यही अच्छा कि खुद जहर खा ले।''

ऊपर से दिखने वाले फौलादी ढांचे में जैसे स्नेह भरा पड़ा है, उसी तरह विनोद भी छलका पड़ता है। बापू सब चीजों में सोडा डालने को कहते थे। इसलिए कुछ भी अड़चन आये, तो सरदार कह उठते, ''सोडा डालो न।'' इसी तरह किसी आलोचना में 'गांधी की रचनात्मक गफलतें' ये शब्द आये। महादेवभाई ने बापू से पूछा, ''रचनात्मक गफलत कैसी होती होगी?'' सरदार कहने लगे, ''आज तुम्हारी दाल जल गयी थी, ऐसी।'' सुनकर बापू खिलखिला पड़े।

एक सज्जन ने गांधी जी से पूछा, ''हम तीन मन की देह लेकर धरती पर चलते हैं और बहुत-सी चींटियां कुचली जाती हैं।''

सरदार ने तुरंत कहा, ''इसे लिख दीजिये कि पैर सिर पर रखकर चलें।''

दूसरे सज्जन ने लिखा, ''स्त्री कुरूप है इसलिए पसंद नहीं है।''

सरदार तुरंत बोले, ''इसे लिखिये न कि आंखें फोड़कर उसके साथ रहे, फिर कुछ कुरूप नहीं दिखेगा।''

जो कुछ मन में है, उसे प्रकट करने में उन्हें हिचक नहीं होती थी। बापू एक बार अपने एक विरोधी नेता को उसकी जन्म तिथि पर बधाई भेजने लगे, तो सरदार ने बड़ी कड़वी बातें सप्रमाण कहीं। बापू बोले, ''देख लेना, मैं यह सब उनसे कहूंगा, हां।'' सरदार ने उत्तर दिया, ''उनके मुंह पर सब बातें कह सकता हूं और कही भी हैं।''

कहावतों का उनके पास अच्छा भंडार था, और जेल में वे उनका प्रयोग दिल खोलकर करते थे। बाजार से मंगाने वाली चीजों में बापू हमेशा कांट-छांट किया करते थे। एक दिन इसी बात पर सरदार बोले, ''आप बचायेंगे तो जेल वाले खा जायेंगे। ये लोग किसी-न-किसी तरह सौ का हिसाब पूरा कर देंगे। मियां लूटे मूठमूठ और अल्ला लूटे ऊंट-ऊंट।'' सुनकर बापू महादेव से बोले, ''लो देख लो, तुम्हारे जानने के लिए नयी कहावत तैयार है।

कला और साहित्य से उन्हें विशेष प्रेम नहीं था। वे तो किसान थे। केवल व्यवहार की बात समझते थे। एक दिन श्री रवींद्रनाथ ठाकुर और उनके शांति निकेतन की बात चल रही थी। सरदार ने शंका प्रकट की कि शांति निकेतन कैसे चलेगा। वे तो बूढ़े हो गये हैं और उनकी जगह लेने वाला वहां कोई नहीं है।

बापू बोले, ''भगवान ने इतनी असाधारण प्रतिभा वाला आदमी पैदा किया है तो उसे यह तो मंजूर नहीं होगा कि उनका काम यों ही बंद हो जाय।''

विवाद बढ़ा तो सरदार ने अपनी बात कही, ''चित्रकला तो ठीक है। मगर उसकी पाठशालाएं कितनी चल सकती हैं। हमारी तो खादी और चरखा है। उसके लिए बापू थोड़े ही चाहिए। ये तो बापू न होंगे तो दूधाभाई भी आकर चलाते रहेंगे। उन्होंने कोई ऐसी चीज नहीं दी जिसे लोग अपने हाथों में ले सकें और जो अखंड रूप से चलती ही रहे।''

महादेवभाई की डायरी के सरदार न कठोर हैं, न विनयी, न गृहस्थ, न संन्यासी। वे तो किसान हैं, जो अपना काम बखूबी जानता है और जिसका लक्ष्य केवल जय है। वे बापू को प्यार करते हैं। वे देश को प्यार करते हैं। वे सब कुछ कर सकते थे, पर जो कुछ भी वे करते उनमें से बापू और भारत की जयजयकार ही फूटती।

इन दिनों की याद करते हुए गांधी जी ने कहा था, ''उनकी अनुपम वीरता से मैं अच्छी तरह परिचित था परंतु पिछले सोलह महीनों में जिस प्रकार रहा वैसा सौभाग्य मुझे कभी नहीं मिला था। जिस प्रकार उन्होंने मुझे स्नेह से ढक लिया वह मुझे अपनी मां की याद दिलाता है। मैं यह कभी नहीं जानता था कि उनमें मां के गुण भी हैं।

जेल में रहते समय सरदार के मन पर दो बार आघात लगे। नवंबर, 1932 में उनकी माता जी का देहांत हो गया। वे वृद्धा थीं फिर भी मां थीं। जब गांधी जी के छूट जाने के बाद वे नासिक जेल में रखे गये तब उनके बड़े भाई विट्ठलभाई का जिनीवा में स्वर्गवास हो गया। इस समाचार से उन्हें गहरा आघात लगा। बहुत प्रेम था इन दोनों भाइयों में। फिर भी किसी शर्त पर जेल से बाहर आकर भाई के दाह संस्कार में भाग लेने से उन्होंने स्पष्ट इंकार कर दिया। उनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा था। नाक में विशेष कष्ट था। सरकार धीरे-धीरे कैदियों को छोड़ रही थी। सबसे पहले उसने जुलाई, 1934 में सरदार को छोड़ा।

गांधी अब हरिजनों के कार्य में लगे थे। गोरी सरकार ने स्वर्ण हिंदुओं और अछूतों में फूट डालने का जो षड्यंत्र रचा था उसे विफल करने के लिए उन्होंने प्राणों की बाजी लगा दी थी। गोलमेज परिषद में ही गांधी जी ने स्पष्ट कर दिया था कि यदि अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों के लिए अलग निर्वाचन मंडल का एवार्ड घोषित किया गया तो उसका विरोध करने के लिए मैं मृत्युपर्यंत लड़ता रहूंगा। उन्होंने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। इसलिए सरदार ने सबसे पहले गुजरात विद्यापीठ को व्यवस्थित किया। उसके बाद एक सेवाभावी डाक्टर भास्कर पटेल को साथ लेकर

बोरसद तालुके में फैली प्लेग के निवारण में जुट गये। बाद में और भी व्यक्ति आ गये। स्वयं गांधी जी चैत्र-बैशाख की तेज चिलचिलाती धूप में, एक छोटे आम के पेड़ के नीचे, कैंप में, सात दिन रहे। जनता के साथ इस प्रकार एकाकार होकर काम करने से ही उसका विश्वास प्राप्त होता है। लोग समझ गये कि नेता हमें सत्याग्रह-संग्राम में कूदने के लिए ही नहीं कहते, जीना भी सिखाते हैं।

राष्ट्रीय कांग्रेस के पचास वर्ष पूरे हो रहे थे। राष्ट्र ने उसकी स्वर्ण जयंती मनाने का निर्णय किया। केंद्रीय विधानसभा का चुनाव भी सिर पर था। इन दोनों कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए सरदार ने अपने स्वास्थ्य की तनिक भी चिंता नहीं की। देश ने बड़े उत्साह से कांग्रेस की स्वर्ण जयंती मनायी और केंद्रीय विधानसभा में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं सन् 1937 में जब प्रांतीय विधानसभाओं के चुनाव हुए तब भी 11 प्रांतों में से 8 प्रांतों में कांग्रेस का बहुमत रहा।

अब कांग्रेस के सामने प्रश्न था कि क्या वह नये विधान के अनुसार मंत्रीपद स्वीकार करके शासन चलाये या नहीं। सरदार चाहते थे कि मंत्रीपद ग्रहण करने चाहिए। उन्होंने गांधी जी को भी राजी कर लिया परंतु अंतिम निर्णय के लिए दिल्ली में कांग्रेस महासमिति की बैठक हुई। उसमें इस प्रस्ताव का सबसे कड़ा विरोध किया पं. मदन मोहन मालवीय ने।

अंत में बोले सरदार पटेल, ''पिछले सैकड़ों वर्षों से हम शासन करना भूल गये थे। अब यह मौका आया है तो उसका प्रयोग होने दीजिये। भविष्य में कभी न कभी तो हमें अपने देश का राज्य चलाना ही है। इसलिए जो प्रांत अपना शासन चलाने की शक्ति नहीं रखते वे शक्तिशाली प्रांतों की मांग क्यों अस्वीकार करें। बंगाल और पंजाब के मित्र इस प्रस्ताव का विरोध करते हैं। किसलिए? आप मंत्रीपद स्वीकार करना चाहें तब भी नहीं कर सकते। मंत्रिमंडल रचने जितना बहुमत आप ने चुनाव में प्राप्त ही नहीं किया है। इसलिए आप दूसरों से कहते हैं कि तुम भी मंत्रिमंडल न बनाओ लेकिन ऐसा करने से देश की हानि होगी। यह प्रस्ताव हम स्वीकार न करेंगे तो हम बुद्धिमान नहीं माने जायेंगे। इसलिए जिन प्रांतों में हमारा बहुमत हो वहां कांग्रेसी मंत्रिमंडल रचने की इजाजत देने में ही बुद्धिमानी होगी।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। आठ प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमंडल बन गये। सरदार पार्लमेंटरी बोर्ड के अध्यक्ष थे। कभी-कभी उनके सामने बड़े परेशान करने वाले मसले आ जाते थे। उदाहरण के लिए सन् 1934 में जब केंद्रीय विधान सभा का चुनाव हुआ तो कांग्रेस ने बंबई की दो सीटों के लिए बंबई कांग्रेस के अध्यक्ष श्री के. एफ. नरीमान और डा. देशमुख को अपना उम्मीदवार घोषित किया। स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में सर कावसजी जहांगीर भी एक सीट के लिए चुनाव लड़ रहे थे। श्री नरीमान चाहते थे कि कांग्रेस उनका विरोध न करे और एक ही उम्मीदवार खड़ा करे पर उनकी बात नहीं मानी गयी।

एक अनुशासित सैनिक की भांति श्री नरीमान को कांग्रेस के निश्चय को

स्वीकार कर लेना चाहिए था लेकिन न जाने क्यों गलत बहाने बनाकर उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया। सरदार चकित रह गये। उन्होंने तुरंत श्री कन्हैयालाल मुंशी को उम्मीदवारी-पत्र भरने को कहा। लेकिन नरीमान तो चाहते थे कि श्री जहांगीर चुने जायें इसलिए उन्होंने ऐसा प्रचार किया जिससे कि मुंशी चुनाव हार गये।

सरदार बहुत दुखी हुए। फिर भी सन् 1937 के प्रांतीय विधानसभा के चुनाव में श्री नरीमान को उन्होंने खड़ा किया। कांग्रेस बहुमत से जीती लेकिन उसने अपने नेता के रूप में श्री बाल गंगाधर खेर को चुना। श्री नरीमान इससे बड़े क्षुब्ध हुए। उन्होंने कहा कि यह सब सरदार के इशारे पर हुआ है। उन्होंने जानबूझकर पारसी जाति के साथ अन्याय किया है। इन आक्षेपों-प्रत्याक्षेपों के कारण वातावरण बड़ा कलुषित हो उठा। तब इस मामले की जांच के लिए एक समिति नियुक्त की गयी। उसके दो सदस्य थे। एक थे गांधी जी, दूसरे थे श्री नरीमान के मित्र पारसी बैरिस्टर श्री बहादुर जी।

समिति ने सबकी बातें सुनी। स्वयं जांच की ओर निर्णय दिया कि सन् 1934 के विधानसभा के चुनाव में श्री नरीमान ने जो गलती की थी वह जानबूझकर की थी। उसके लिए वे दोषी हैं और श्री नरीमान ने सरदार पर जो आरोप लगाये हैं उनमें कोई सच्चाई नहीं है।

श्री नरीमान ने पहले तो इस निर्णय को स्वीकार कर लिया लेकिन फिर मुकर गये। तब कार्यसमिति ने उन्हें कांग्रेस में कोई भी जिम्मेदारी और विश्वास का स्थान लेने के लिए अयोग्य करार दे दिया।

दूसरी घटना भी कम दुखद नहीं थी। तत्कालीन मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे डा. खरे। हिंदी प्रदेशों के तीन मंत्रियों से उनकी नहीं बनती थी। पार्लमेंटरी बोर्ड ने समझौता कराने का प्रयत्न किया पर कोई परिणाम नहीं निकला। डा. खरे और उनके पक्ष के मंत्रियों ने कांग्रेस के नियमों के विरुद्ध अपने त्यागपत्र गवर्नर को भेज दिये। गवर्नर ने सब कुछ जानते हुए भी उन्हें स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं उसने शेष मंत्रियों के त्यागपत्र भी मांग लिये और डा. खरे से नया मंत्रिमंडल बनाने को कहा। डा. खरे ने उनकी बात मान ली। यह स्पष्ट रूप से कांग्रेस के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा थी। कार्यसमिति ने सभी मंत्रियों को बुलाया। उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। उन्होंने समिति के इस सुझाव को भी मान लिया कि नये नेता का चुनाव किया जाय। लेकिन बाद में डा. खरे ने लिख भेजा कि वे दूसरा नेता चुनने के लिए दल की बैठक नहीं बुलायेंगे।

कार्यसमिति के सामने एक ही मार्ग शेष था कि वह इस कांड की निंदा करे। उसने डा. खरे को कांग्रेस के किसी भी जिम्मेदारी के पद के लिए अयोग्य घोषित कर दिया। मराठी भाषा प्रदेश में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई और उनके आक्रमण का शिकार हुए सरदार पटेल। प्रांतवाद का विष किस सीमा तक जा सकता है इसका यह एक उदाहरण है।

प्रसव वेदना

फरवरी, 1938 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बारडोली तालुके के हरिपुरा गांव में हुआ। श्री सुभाषचंद्र बोस उसके अध्यक्ष थे। स्वागताध्यक्ष थे दरबार श्री गोपालदास देसाई, पर व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी तो सरदार पर थी। उन्होंने विट्ठलनगर की जैसी व्यवस्था की उसकी सभी ने प्रशंसा की।

परंतु हरिपुरा कांग्रेस तो अपने एक और ही महत्वपूर्ण निर्णय के लिए प्रसिद्ध है। भारत दो भागों में बंटा था—ब्रिटिश राज्य और देशी राज्य। अभी तक राष्ट्रीय कांग्रेस देशी राज्य के आंदोलनों में कोई रुचि नहीं लेती थी। हरिपुरा कांग्रेस में पहली बार यह प्रस्ताव पास किया गया कि देशी राज्यों में जहां भी प्रजामंडल हों या ऐसी ही दूसरी कोई संस्था हो, कांग्रेस उसके साथ सहयोग करे और उसका मार्गदर्शन करे।

इसके परिणामस्वरूप देशी राज्यों में धड़ाधड़ प्रजामंडलों की स्थापना होने लगी। और उन्होंने उत्तरदायी शासन की मांग शुरू कर दी। इस प्रसंग में राजकोट का आंदोलन कई कारणों से बहुत प्रसिद्ध है। वहां के दीवान वीरबाला राजनीति के कुशल खिलाड़ी थे। उन्होंने राज्य की आय बढ़ाने के लिए जुआघर तक खोले थे। मजदूरों को अधिक घंटे काम करने के लिए मजबूर किया था।

प्रजा इस अनाचार को कैसे सह सकती थी। उसने श्री ढेबरभाई के नेतृत्व में सत्याग्रह शुरू कर दिया। वे सत्य पर थे इसलिए अंत में उनकी जीत हुई। उस समय सरदार साहब ने दरबार वीरबाला को सलाह दी कि वे ठाकुर साहब से राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए कहें।

दरबार वीरबाला ने एक ओर तो ऐसा करने का आश्वासन दिया, दूसरी ओर षड्यंत्र करके एक अंग्रेज को ठाकुर साहब का सलाहकार बना दिया। प्रजा पर फिर जुल्म होने लगे। फिर गिरफ्तारियां हुईं। फिर समझौता वार्ता चली। यह क्रम कई बार दोहराया गया। अंत में गांधी जी बीच में पड़े। उन्होंने ठाकुर साहब से भेंट की। कैदियों से भी मिले। फिर इस बातचीत के आधार पर उन्होंने कुछ प्रस्ताव तैयार किये और ठाकुर साहब को लिखा कि यदि वे इनको स्वीकार नहीं करेंगे तो वे उपवास शुरू कर देंगे।

ठाकुर साहब ने इस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया। गांधी जी ने उपवास शुरू कर

दिया। उन्होंने वायसराय को भी एक पत्र लिखा। वायसराय ने तुरंत इस पत्र का उत्तर दिया और भारत के मुख्य न्यायाधीश पर मॉरिस ग्वायर को समझौते की शर्तों का सही अर्थ स्पष्ट करने के लिए नियुक्त किया।

गांधी जी ने अपना उपवास तोड़ दिया। मुख्य न्यायाधीश मामले की जांच करने लगे। अंत में उन्होंने निर्णय दिया, ''समिति के दस सदस्यों में से सात सदस्य प्रजा परिषद की ओर से सरदार वल्लभभाई द्वारा सुझाये हुए होंगे।''

इस घटना से दूसरे राजा सावधान हो गये और प्रजा परिषदें भी उत्तरदायी शासन के लिए तैयार हो गयीं। यह एक शुभ शकुन था। परंतु अगले वर्ष स्वयं कांग्रेस के भीतर एक गहरा संकट पैदा हो गया। सन् 1939 में कांग्रेस का अधिवेशन त्रिपुरा में होने जा रहा था। उसके अध्यक्ष पद के लिए कार्यसमिति ने मौलाना अबुल कलाम आजाद का नाम सुझाया लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया। तब समिति ने डा. पट्टाभि सीतारमैया के नाम का प्रस्ताव किया। श्री सुभाषचंद्र बोस भी मैदान में थे। उन्होंने समिति के कहने पर अपना नाम वापस नहीं लिया। गांधी जी और जवाहरलाल जी की बात भी उन्होंने नहीं मानी। चुनाव हुआ और वे जीत गये। गांधी जी ने इसे अपनी हार माना।

उसके बाद कांग्रेस में जो अप्रिय घटनाएं घटीं, वे किसी भी दृष्टि से इस महान संस्था के अनुरूप नहीं थीं। श्री सुभाषचंद्र बोस उन दिनों बहुत अस्वस्थ थे। वे त्रिपुरा के खुले अधिवेशन में आ भी नहीं सके। समिति ने गांधी जी के नेतृत्व में विश्वास प्रगट करते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे कार्यसमिति के सदस्यों का चुनाव गांधी जी की सलाह से करें।

कांग्रेस अध्यक्ष ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। जवाहरलाल जी के सारे प्रयत्न विफल हो गये। खाई बढ़ती गयी। सुभाषबाबू ने अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर डा. राजेंद्र प्रसाद चुने गये लेकिन वातावरण अब भी क्षुब्ध था। बात यहां तक बढ़ी कि उनके कुछ कार्यों के लिए सुभाषबाबू को तीन वर्ष के लिए कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। जो कुछ हुआ वह दुर्भाग्यपूर्ण था। इससे भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि इसके लिए सरदार साहब ही सबसे अधिक बंगाल के कोपभाजन बने। वे स्पष्टवादी थे। इसीलिए शब्दों में उलझना उन्हें नहीं आता था। जो हृदय में था वही जबान पर था। उन्हें उनके पास जाकर ही पहचाना जा सकता था। जो पास नहीं जा पाते थे वे उन्हें अपना शत्रु समझ बैठते थे। सौराष्ट्र के एक राजा ने उनके लिए कहा था, ''चरोतर के एक कुनबी की क्या ताकत कि वह हमें अपने राज्य से उखाड़ दे।''

उन्होंने सरदार की हत्या का षड्यंत्र भी रचा था। परंतु जब वे सरदार के संपर्क में आये, उनको पहचाना, तब वे ही नरेश उन्हें अपना बड़ा भाई मानने लगे।

कांग्रेस इस तरह भंवर जाल में फंसी हुई थी कि यूरोप पर युद्ध के बादल मंडरा

उठे। हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी ने यूरोप के छोटे-छोटे देशों पर अधिकार करना शुरू कर दिया। पहले तो सारा यूरोप स्तब्ध-सा देखता रहा। लेकिन जब उसने पोलैंड पर अधिकार कर लिया तब विवश होकर इंग्लैंड और फ्रांस आदि मित्र राष्ट्रों को उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करनी पड़ी।

कुछ समय बाद भारत के वायसराय ने भी इस देश को युद्ध में झोक दिया। उसने प्रजा के द्वारा चुने गये मंत्रिमंडलों से सलाह तक नहीं ली। मित्र राष्ट्रों ने इतना ही कहा कि यदि वे जीते तो संसार में प्रजातंत्र के लिए मार्ग खुल जायेगा। लेकिन कांग्रेस ने मांग की कि इंग्लैंड स्पष्ट शब्दों में कहे कि युद्ध के बाद भारत में प्रजातंत्र की स्थापना की जायेगी। गांधी जी इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थे। वे मानते थे भारत की मुक्ति के लिए हिंसा का उपयोग न किया जाय। युद्ध का समर्थन हिंसा का समर्थन है। इंग्लैंड इस वक्त भयानक संकट में है। हिटलर के बमों की मार से उनके राजमहल धराशायी हो रहे हैं। उसकी सहायता बिना किसी शर्त करनी चाहिए।

कार्यसमिति के अधिकतर सदस्य, जिनमें सरदार भी थे, गांधी जी के तर्क को स्वीकार नहीं कर सके। सरदार ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूं परंतु यदि आप कहें कि इस विषय में मुझे अपनी मान्यता के अनुसार आचरण करना चाहिए तो मैं यह मानता हूं कि युद्ध पूरा होने के बाद भारत को पूर्ण स्वतंत्रता देने की शर्त पर सहायता करने में मेरे किसी व्रत का भंग नहीं होता। अहिंसा से भारत को स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, आपका वह सूत्र मुझे व्यावहारिक मालूम हुआ। उस हद तक अहिंसा धर्म मैंने स्वीकार किया। उसका मैं पूर्ण श्रद्धा से पालन करता हूं परंतु मैं यह नहीं मानता कि स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अंग्रेज सरकार को युद्ध में नैतिक सहायता अथवा सीधी सहायता देने में मेरी अहिंसा की प्रतीक्षा भंग होती है। फिर भी यदि आप आज्ञा दें कि मुझे आपके साथ रहना चाहिए तो मैं अपने मतभेद एक ओर रखकर आपकी आज्ञा के अनुसार आचरण करूंगा।"

पहली बार गांधी जी और सरदार के बीच मतभेद प्रकट हुए पर उनमें कड़वाहट जरा भी न थी। जब गुजरात प्रदेश कार्यसमिति के 105 सदस्यों में से 100 ने सरदार का समर्थन किया तो गांधी जी प्रसन्न हुए, बोले "गुजरात तो सरदार का है न?"

गांधी जी कांग्रेस से अलग हो गये पर, फिर भी वे वायसराय से मिले और उन्हें सलाह दी कि कांग्रेस की मांग स्वीकार कर लेनी चाहिए। लेकिन सरकार की नीयत साफ नहीं थी। वायसराय ने कांग्रेस, मुस्लिम लीग और राजाओं के बीच निरंतर फूट डालने का प्रयत्न किया। उसने अपने वक्तव्य में कहा, "इन सब बातों का निर्णय युद्धकाल में करना संभव नहीं है। बाद में सब पक्षों से विचार विमर्श करके ही कुछ कहा जा सकेगा।"

इस वक्तव्य के बाद कांग्रेस का उत्साह ठंडा पड़ गया। कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिये। लेकिन अभी भी वह सरकार के युद्ध प्रत्यनों में बाधा डालना नहीं

चाहती थी। गांधी जी फिर वायसराय से मिले, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला।

तब सरदार पटेल ने सरकार की बदनीयत का पर्दाफाश करते हुए एक वक्तव्य निकाला। उन्होंने मानो भविष्यवाणी की, ''आप इस युद्ध में यदि हार गये तो अपना सब कुछ गंवा देंगे और यदि जीते भी तो इतना अधिक खोकर यह जीत पायी होगी कि आप पराजित राष्ट्र की तरह ही कमजोर बन जायेंगे। इस युद्ध के अंत में कोई राज्य दूसरे राज्य के आधिपत्य में नहीं रहेगा। इस विषय में विश्व के लोगों के विचारों तथा मान्यताओं में जड़मूल से क्रांति हो जायेगी।

सन् 1940 में, रामगढ़ में कांग्रेस ने इसी आशय का प्रस्ताव पास किया। उसने सत्याग्रह का संकेत भी दिया। यह सब होने पर भी वह समझौता करने को व्यग्र थी परंतु सरकार अपनी अकड़ छोड़े तब तो समझौता हो।

युद्ध में मित्रराष्ट्रों की स्थिति खराब हो रही थी। जापान भी जर्मनी की ओर से युद्ध में आ गया था। उसने दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों पर अधिकार करना शुरू कर दिया। भारत के लिए खतरे की घंटी बज उठी। लेकिन सौभाग्य से तभी रूस ने हिटलर का विरोध करने का निर्णय किया। वह मित्र राष्ट्रों के साथ आ गया।

भारत में जो कम्युनिस्ट विचारधारा के लोग थे वे इससे प्रसन्न हुए। उन्होंने मित्र राष्ट्रों के पक्ष में प्रचार करना शुरू कर दिया। जापान के आक्रमण का भय तो था ही, इसलिए इंग्लैंड ने विदेशी फौजों को भारत में भेजना शुरू कर दिया। उनको बसाने के लिए उसने गांव-के-गांव उजाड़ दिये, और भी जुल्म किये। जब नेताओं ने इसका विरोध किया तो उन्हें युद्ध प्रयत्न में रुकावट डालने के अपराध में जेल में डाल दिया गया। श्री जवाहरलाल नेहरू उनमें एक थे। यह कांग्रेस के लिए चुनौती थी। गांधी जी ने इसका जवाब 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' से दिया। 16 अक्तूबर, 1940 से यह शुरू हुआ। पहले सत्याग्रही थे विनोबा भावे। दूसरे थे श्री जवाहरलाल नेहरू, पर वे पहले ही चार वर्ष के लिए जेल में बंद कर दिये गये थे। इसलिए उनका स्थान मिला सरदार साहब को। उन्होंने 18 नवंबर, 1940 को सत्याग्रह करने का निश्चय किया पर सरकार ने उन्हें 17 तारीख को पकड़ कर साबरमती जेल में बंद कर दिया।

यह युद्ध बड़ा अद्‌भुत था। सत्याग्रही सार्वजनिक सभा में जाकर नारे लगाते–

हम न देंगे एक पाई,
हम न देंगे एक भाई,
अंग्रेजों की यह लड़ाई।

फिर कहते, 'जन या धन से ब्रिटेन के युद्ध प्रयत्न में सहायता देना गलत है। युद्ध का एकमात्र उपचार युद्ध मात्र का अहिंसात्मक प्रतिरोध से मुकाबला करना है।'

सरदार जब जेल में थे तब उनके पीछे सरकार की नीति के कारण अहमदाबाद आदि स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे शुरू हो गये थे। सरदार की मानसिक पीड़ा का पार नहीं था। स्वास्थ्य उनका पहले ही खराब था। डाक्टरों ने बताया कि उन्हें कैंसर हो

गया है। सरकार ने डरकर उन्हें छोड़ दिया पर सौभाग्य से वह कैंसर नहीं था। आंतों का रोग था।

इधर सांप्रदायिक दंगों के कारण गांधी जी ने गुजरात में सत्याग्रह बंद कर दिया, इधर जापान ने मलाया और बर्मा आदि देशों पर अधिकार कर लिया। ऐसी नाजुक स्थिति देखकर अमेरिका ने इंग्लैंड से कहा कि उसे किसी भी तरह भारत को संतुष्ट करना चहिए।

आखिर प्रधानमंत्री चर्चिल ने अपने मंत्रिमंडल के एक सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्स को कुछ प्रस्तावों के साथ भारत भेजा। पर वे प्रस्ताव इतने खोखले थे कि वे कुछ न कर पाये। सरदार ने कहा, ''आज तक इनसे अधिक प्रपंची प्रस्ताव हमारे सामने कभी नहीं रखे गये थे। वे इस प्रकार तैयार किये गये थे जिससे युद्ध के बाद भी ब्रिटिश सत्ता भारत में अधिक दृढ़ता से जमी रहे। यदि भारत को वास्तव में बाहरी खतरे का सफलतापूर्वक सामना करना हो तो उसकी प्रजा के हाथ में संपूर्ण सत्ता और स्वतंत्रता होनी चाहिए। ब्रिटेन भारत की रक्षा के लिए नहीं लड़ता बल्कि उस पर अपना आधिपत्य चिरकाल तक बनाये रखने के लिए लड़ता है। अगर अंग्रेज भारतीयों की रक्षा के लिए लड़ते होते तो कांग्रेस की मांग स्वीकार करने में उन्होंने कोई आनाकानी न की होती।''

दो टूक शब्दों में सरदार साहब ने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी थी।

कड़वा घूंट

गांधी जी जब सब प्रयत्न करके हार गये तो उन्होंने अपना अमर स्वर घोष किया, ''अंग्रेजो, भारत छोड़ो।'' उन्होंने अंग्रजों को सलाह दी, ''भारत जैसे महान देश को खतरे में रखना बड़ा खतरनाक है। युद्ध के अंत में जब ब्रिटेन स्वयं शव जैसा निश्चेतन हो जायेगा उस समय भारत के समान भारी शव के बोझ से तो दबकर वह मर ही जायेगा। इस लिए अपने स्वार्थ के लिए ही सही, अब ब्रिटेन को भारत से चला जाना चाहिए।''

जनता से उन्होंने कहा कि जब तक अंग्रेज सरकार इस सलाह को मानकर भारत से चली न जाय तब तक प्रजा 'करेंगे या मरेंगे' की प्रतिज्ञा लेकर सत्याग्रह करती रहे और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे कि उनके लिए भारत में राज्य करना असंभव हो जाय।

कांग्रेस कार्यसमिति ने भी अंत में 14 जुलाई, 1942 को वह प्रस्ताव पास कर दिया, जिसके अनुसार 'ब्रिटिश सरकार यदि कांग्रेस की मांग स्वीकार न करे तो 1920 के बाद कांग्रेस ने राजनीतिक अधिकार और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जिन-जिन अहिंसक साधनों का उपयोग किया है, उन सबका एक-एक उपयोग करना उसका फर्ज हो जायेगा।'

इस प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए 7 अगस्त, 1942 को बंबई में महासमिति की बैठक बुलायी गयी। सरदार साहब का स्वास्थ्य उनका साथ नहीं दे रहा था। फिर भी वे अनथक परिश्रम कर रहे थे। उन्होंने सारे देश का दौरा किया। वे भावी युद्ध के लिए जनता को चेतावनी देना चाहते थे। उस प्रस्ताव पर उन्होंने जो भाषण दिया, वह आग उगलने वाला था। उन्होंने कहा, ''यह आंदोलन भिन्न प्रकार का है। यदि आप समझते हैं कि हमारा सब कुछ सलामत रहेगा, हमारा व्यापारधंधा चलता रहेगा। बहुत हुआ तो हम जेल में जा बैठेंगे—वहां खायेंगे, पुस्तकें पढ़ेंगे और शान बढ़ायेंगे तो आप यह प्रस्ताव पास न करें।

लेकिन यदि आपका यह निश्चय हो कि इस आंदोलन में आजादी लेने के लिए मरने का मौका आने पर मर जायेंगे, फना हो जायेंगे, तभी आगे बढ़िये। और यह भी मानकर चलना कि इस आंदोलन से, इस लड़ाई से जो कुछ मिलेगा—हमें कुछ न

चाहिए। ऐसा निश्चय हो तो ही आप इस आंदोलन में शामिल हों।''

महासमिति ने 8 अगस्त, 1942 को प्रचंड बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दिया। दूसरे दिन सवेरे ही सरकार ने दूसरे नेताओं के साथ सरदार साहब को भी गिरफ्तार करके अहमदनगर के किले में बंद कर दिया। देश एक क्षण को स्तब्ध रह गया, लेकिन दूसरे ही क्षण जनता का रोष झरने की तरह उबल उठा। गांधी जी मंत्र दे गये थे कि सब अपने नेता आप होंगे। इसलिए सरकारी संस्थानों पर धावा बोला जाने लगा। रेल की पटरियां उखाड़ दी गयीं। टेलीफोन के तार काट डाले गये। पुलिस स्टेशन भी नहीं बचे। उधर सरकार ने भी जुल्म की इंतहा कर दी। गोली चलाना और गोली खाना जैसे हंसी खेल हो गया था। सारा देश एक बहुत बड़ा जेलखाना बन गया। अत्याचार के काले धुएं ने सारे वातावरण को गंदा कर दिया। चारों ओर हाहाकार, चीत्कार, बरबादी और त्राहि-त्राहि मच गयी।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार 60,000 से अधिक पकड़े गये, 18,000 से अधिक नजरबंद हुए, 2,500 से अधिक मरे या घायल हुए। करोड़ों रुपए जुर्माना हुआ। हजारों मकान जले। जनता पर गोली चलाने के लिए हवाई जहाजों का प्रयोग हुआ। इस प्रकार स्वतंत्रता के इस यज्ञ में देश के लाडले सपूतों ने प्राणों की आहुति देने में कोई कसर न उठा रखी।

दूसरी ओर विश्वयुद्ध भी महानाश के कगार पर पहुंच गया था। जापान की आंख भारत पर लगी थी। बंगाल की खाड़ी में हलचल थी। वायुयान उनके आकाश में मंडरा रहे थे। श्री सुभाषचंद्र बोस सन् 1941 में भारत से निकल भागे थे। उन्होंने आजाद हिंद फौज की स्थापना की और दिसंबर 1943 में जापान की सहायता से बाकायदा युद्ध की घोषणा कर दी। शीघ्र ही पोर्टब्लेयर पर उनका कब्जा हो गया। इतना ही नहीं मई, 1944 तक उन्होंने इम्फाल का घेरा डाल दिया। उनका लक्ष्य था 'दिल्ली चलो'। उनका ध्येय था, 'आजादी या मौत'।

गांधी जी पूना के आगा खां महल में नजरबंद थे। 15 अगस्त, 1942 को उनके निजी सचिव महादेवभाई अचानक चल बसे थे। 22 फरवरी, 1944 को माता कस्तूरबा का भी देहांत हो गया। इससे पूर्व सरकार के रवैये से दुखी होकर उन्होंने (9 फरवरी, 1943 से) 21 दिन का अनशन भी किया था। एक बार तो उनके बचने की आशा नहीं रही थी। माता कस्तूरबा के देहांत के बाद उनका स्वास्थ्य और भी खराब हो गया। तब 6 मई, 1944 को सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया। लेकिन सरदार को नहीं छोड़ा। वे अहमदनगर के किले में थे। आंतों का पुराना रोग उन्हें फिर कष्ट देने लगा था। वे न लेट सकते थे, न खाना खा सकते थे। बस पानी पीकर रहते थे।

इस प्रकार स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी कि मई, 1945 में युद्ध समाप्त हो गया। मित्र राष्ट्र जीत गये। भारत के नये वायसराय ने घोषणा की, ''समस्या का हल निकालने के लिए 25 जून से शिमला में राजनीतिक नेताओं का सम्मेलन होगा।

कांग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्यों की रिहाई के आदेश दे दिये गये हैं।''

15 जून, 1945 को दूसरे नेताओं के साथ सरदार पटेल भी मुक्त कर दिये गये। पहले वे गांधी जी से मिले। फिर नेताओं के सम्मेलन में भाग लेने शिमला पहुंचे। परंतु उस सम्मेलन का आधार सांप्रदायिक था। इसलिए वह सफल न हो सका। मि. जिन्ना ने वहां बड़ा कड़ा रुख अपनाया। जब कांग्रेस के नेता जेल में थे तो मुस्लिम लीग ने मुसलमानों पर काफी प्रभाव जमा लिया था इसलिए वे पाकिस्तान लेने की अपनी हठ पर अड़े रहे। तब तक ब्रिटेन में मजदूर दल की सरकार बन चुकी थी। उसकी नीति में परिवर्तन होना आवश्यक था इसलिए 15 अगस्त को बादशाह ने घोषणा की, ''भारतीय जनता से किये गये वायदों के अनुसार मेरी नयी सरकार भारतीय नेताओं से मिलकर शीघ्र ही वहां पर स्वशासन स्थापित करने के लिए भरसक प्रयत्न करेगी।''

यह इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि सेना में भी विद्रोह की चिंगारियां उठने लगी थीं। फरवरी, 1946 में नौसैनिकों ने सचमुच विद्रोह का झंडा बुलंद कर दिया। ब्रिटेन ने भविष्य को जैसे पहचान लिया और लार्ड पैथिक लारेंस के नेतृत्व में एक कैबिनेट मिशन भारत भेजा। वह कई दिन तक नेताओं से बात करता रहा।

मई, 1946 में उसने अपनी योजना प्रकाशित कर दी। उसमें कहा गया था कि एक अखिल भारतीय संयुक्त राष्ट्र में ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य शामिल होंगे। उनके अधीन विदेशी मामले, रक्षा और यातायात के विषय होंगे। शेष विषय प्रांतों और राज्यों के अधीन होंगे।

यद्यपि कांग्रेस के नेता इससे सहमत नहीं थे, फिर भी कुछ संशोधनों के साथ उन्होंने इस योजना को स्वीकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन प्रांतों में पहले कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे वे फिर ज्यों-के-त्यों संगठित हो गये। 2 सितंबर, 1946 को केंद्र में अंतरिम सरकार बनी। इसके नेता हुए पं. जवाहरलाल नेहरू। गृह विभाग सरदार वल्लभभाई को सौंपा गया। मुस्लिम लीग पहले तो इसमें शामिल नहीं हुई, जब हुई तो उसने अपने लिए गृह विभाग की मांग की। लेकिन सरदार साहब किसी भी तरह तैयार नहीं हुए। मुस्लिम लीग को वित्त विभाग लेकर संतुष्ट होना पड़ा।

कुछ लोगों का कहना था कि सरदार साहब को हठ नहीं करनी चाहिए थी पर ऐसा कहने वालों को शासन का अनुभव नहीं था। देश में उस समय सांप्रदायिकता का जोर था। पुलिस गृह विभाग के अधीन होती। मुस्लिम लीग अवश्य उसका दुरुपयोग करती। क्योंकि उसने घोषणा की थी कि वह केंद्रीय सरकार को तोड़ने के लिए ही उसमें शामिल हुई है।

इससे पहले वह (16 अगस्त, 1946) 'सीधी कार्रवाई' का दिन मना चुकी थी। उसके कारण अशांत देश और भी अशांत हो उठा था। देश भर में सांप्रदायिक दंगे

हो रहे थे। चारों ओर हैवानियत का बोलबाला था। स्त्री-बच्चे, किसी का जीवन सुरक्षित नहीं रहा था।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री घोषणा कर चुके थे कि जून, 1948 में भारत को स्वतंत्रता दे दी जायेगी। लेकिन नये वायसराय लार्ड माउंटबेटन ने देखा कि स्थिति बहुत खराब है। पाकिस्तान की मांग भी प्रबल हो रही है तो उन्हें विश्वास हो गया कि भारत अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकेगा। उन्होंने ब्रिटेन की सरकार से फिर सलाह की और अंतिम रूप से 3 जून को यह घोषणा की कि भारत 15 अगस्त, सन् 1947 को एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया जायेगा और मुस्लिम लीग को पाकिस्तान दे दिया जायेगा अर्थात् भारत दो भागों में बंट जायेगा। गांधी जी बंटवारे की शर्त पर स्वतंत्रता लेने को तैयार नहीं थे।

ऐसे तनाव भरे वातावरण में 14 जून, 1947 को इस योजना पर विचार करने के लिए कांग्रेस ने महासमिति की बैठक, नयी दिल्ली में बुलायी। सबके हृदय संतप्त थे। मंडप में सिसकियां सुनाई दे रही थीं। भारत के टुकड़े होने जा रहे थे। उस समय सरदार उठे। उनका दिल भरा हुआ था। पर उन्होंने जो कुछ कहा वह उनकी और कांग्रेस की स्थिति को निर्विवाद रूप से स्पष्ट कर देता है, ''मैं जीवन भर भारत की एकता के लिए प्रयत्नशील रहा हूं। आप सबको इस प्रस्ताव से जो दुख हुआ है उससे कम मुझे भी नहीं हुआ परंतु मेरे दिल में यह बात बैठ गयी है कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करना ही पड़ेगा—दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। पिछले नौ महीनों से देश की शासन व्यवस्था हम लोग चला रहे हैं। इस अरसे में मुझे अत्यंत दुखद अनुभव हुए हैं। मैंने अनुभव किया है कि यदि हम यह स्वीकार नहीं करेंगे और पिछले नौ मास में देश का शासन जिस तरह चला है और ब्रिटिश सल्तनत ने जिस तरह उसे चलने दिया है वैसा ही यदि अधिक समय तक वह चलता रहा तो मुझे निश्चित भय है कि समूचा भारत पाकिस्तान बन जायेगा। इसलिए यदि सारे भारत को पाकिस्तान बनने से बचाना हो तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करके देश के विभाजन का खतरा उठाकर भी अंग्रेज सरकार को भारत से हटाने में बुद्धिमानी होगी। इसी में देश का सुख निहित है। इसी दृष्टि से मैं दुख और वेदना में रुदन करने वाले मित्रों से अनुरोध करता हूं कि वे इस कड़वे घूंट को पी जायें।''

गांधी जी का विरोध रहने पर भी, स्वतंत्रता की खातिर, कांग्रेस को वह कड़वा घूंट पीना पड़ा।

मुक्ति दिवस मुस्काया

भारत स्वतंत्र हो गया। चालीस कोटि जन विदेशी कारा तोड़कर मुक्त हो गये। दो स्वतंत्र राष्ट्रों, भारत और पाकिस्तान का जन्म क्रमश: 15 और 14 अगस्त, 1947 को हुआ। यद्यपि पैशाचिकता की छाया अभी दूर नहीं हुई थी, स्थान-स्थान पर सांप्रदायिकता के शोले उठ रहे थे, तो भी देश ने हर्षोन्नत होकर स्वतंत्रता का स्वागत किया।

आहुतियों और बलिदानों की बीती रात अंधेरी,
बुझे दीप के पास जले परवानों की ढेरी,
अमर शहीदों की समृतियों से, आज हृदय भर आया,
दो शताब्दि की रात कटी, फिर मुक्ति दिवस मुस्काया।

(चिरंजीत)

स्थान-स्थान पर सभायें हुईं, मिठाइयां बंटीं, दरिद्रों को भोजन कराया गया। नगर बिजली के बल्बों से, गांव तेल के दीपों से जगमगा उठे। 'महात्मा गांधी की जय' तो अणु-अणु में गूंज रही थी और भारत का तिरंगा राष्ट्रध्वज आकाश में ऊंचा, और ऊंचा लहरा रहा था।

ब्रिटिश हुकूमत समाप्त हो गयी थी पर स्वतंत्र भारत की पहली राष्ट्रीय सरकार ने अंतिम वायसराय लार्ड माउंटबेटन को अपना पहला गवर्नर जनरल बनाया। सरदार ने उन्हें अच्छी तरह पहचान लिया था। वे उनके मित्र बन गये थे।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री हुए श्री जवाहरलाल नेहरू और उपप्रधानमंत्री बने हमारे सरदार। गृह विभाग के अतिरिक्त देश राज्यों से संबंधित विभाग भी उनको सौंपे गये। अंग्रेज सरकार ने भारत को स्वतंत्र करते समय देश के लगभग छह सौ रजवाड़ों को भी स्वतंत्र घोषित कर दिया था। उनको अधिकार था कि वे किसी देश, भारत या पाकिस्तान, में शामिल हो सकते हैं। बहुत-से राजा यह भी समझने लगे थे कि वे पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न राज्य के रूप में स्वतंत्र भी रह सकते हैं। श्री जिन्ना ने स्पष्ट कहा था, ''कैबिनेट मिशन के रियासतों संबंधी संलेख में कहीं यह मत व्यक्त नहीं किया गया है कि वे दोनों संविधान सभाओं में से किसी एक में सम्मिलित होने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही न चुनें। रियासतें अपनी इच्छानुसार पूर्ण स्वतंत्र रह सकती हैं।''

इसका अर्थ था देश का सैकड़ों टुकड़ों में बंट जाना और भारत की एक बड़ी जनसंख्या का पहले से भी अधिक राजाओं के निरंकुश शासन में रहना। ऐसी परिस्थिति में उनकी महत्त्वाकांक्षा को नियंत्रण में रखकर उन सबको भारतीय संघ में शामिल करने का काम कितना कठिन था यह सोचा भी नहीं जा सकता। यही कठिन काम हमारे सरदार को करना था।

इस समय इस विभाग के सचिव थे श्री वी.पी. मेनन। उनकी सहायता से सरदार ने एक योजना तैयार की थी। उन्होंने राजाओं को लिखा, "हम सबका हित एक है। हम सब एक गौरवपूर्ण विरासत के हकदार हैं। हम सब एक रक्त और उदात्त भावनाओं के बंधन से परस्पर जुड़े हुए हैं। ...और कांग्रेस उनकी शत्रु नहीं है, इसलिए मुझे आशा है कि भारत के देशी राज्य इस बात को अच्छी तरह समझ लेंगे कि परस्पर कल्याण के लिए हम सहयोग की भावना से काम नहीं करेंगे तो देश में अराजकता फैल जायेगी और उसके फलस्वरूप हम सबका सर्वनाश हो जायेगा।"

इस वक्तव्य से राजाओं के मन का डर दूर हो गया। सरदार की यह बात उन्हें पसंद आयी, "हमें विदेशी और विदेशों के बीच होने वाले कौल करार और संधि-पत्र लिखने की जरूरत नहीं। हमें तो भाई और भाई, अपने सामान्य हित का विचार करने के लिए एक साथ बैठकर जैसी बातचीत करते हैं और दोनों के मन को संतोष हो ऐसे निर्णयों पर पहुंचते हैं, वैसी ही बातचीत और निर्णय करने के लिए एकत्र होना है।"

इस प्रकार दोनों पक्षों में बातचीत शुरू हुई। वे बार-बार मिले। कैसी-कैसी अड़चनें आयीं। त्रावणकोर के दीवान सर सी.पी. रामास्वामी अय्यर अकड़ गये। उन्होंने और हैदराबाद के निजाम ने घोषणा की कि हम स्वतंत्र रहेंगे। भोपाल के नवाब भी गंदी-गंदी चालें चल रहे थे। जोधपुर और जैसलमेर को मि. जिन्ना अपनी ओर मिलाने को फुसला रहे थे परंतु अंत में, कहीं तो जनता के विद्रोह के कारण जैसे त्रावणकोर में, कहीं भविष्य के डर से, हैदराबाद के निजाम, जूनागढ़ और उसके आश्रित दो छोटे मुस्लिम राज्यों मागरोल और माणवेदर को छोड़कर सभी बड़े रजवाड़ों ने तीन विषयों में भारतीय संघ के साथ जुड़ने का निश्चय किया। ये तीन विषय थे–1-राष्ट्रीय सुरक्षा, 2-विदेशों के साथ संबंध और 3-परस्पर आंतरिक व्यवहार अर्थात डाक-तार और रेल व्यवहार।

जो छोटे-छोटे राज्य और ताल्लुकेदार थे उनके साथ यह करार हुआ कि वे उसी स्थिति में रहेंगे जिसमें स्वतंत्रता से पूर्व थे। यानी भारतीय संघ से उनके वे ही संबंध होंगे जो ब्रिटिश सरकार के पोलिटिकल डिपार्टमेंट के साथ थे।

सरदार पटेल ने उदारता और स्नेह के बल पर एकीकरण के करार इस प्रकार तैयार किये कि सभी राजाओं ने बिना किसी संकोच के उन पर हस्ताक्षर कर दिये।

जूनागढ़ किसी भी दृष्टि से पाकिस्तान के साथ जुड़ने की स्थिति में नहीं था।

उसकी अस्सी प्रतिशत जनता हिंदू थी। वहां हिंदू और जैनियों के अनेक धर्मस्थान थे, उसकी सीमा कहीं पाकिस्तान से नहीं मिलती थी। इसलिए नवाब की जिद से प्रजा में बड़ा असंतोष पैदा हो गया। उसने विद्रोह कर दिया। एक अंतरिम सरकार उसने बनायी। यह देखकर नवाब अपने हीरे-जवाहरात और कुछ कुत्ते लेकर पाकिस्तान भाग गया।

अब अंतरिम सरकार का उत्साह और भी बढ़ गया। उसने राज्य की सेना से लोहा लिया। कुछ लोग मारे गये। राज्य में असुरक्षा की भावना फैल गयी। दीवान शाहनवाज भुट्टो घबरा गये। उन्होंने श्री जिन्ना को लिखा। उन्होंने नवाब से बातें कीं। नवाब ने दीवान साहब को लिखा। परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान के विरोध करने पर भी अंत में जूनागढ़ भारत संघ में शामिल हो गया।

सरदार नवंबर, 1947 में जूनागढ़ गए। वह प्रभासपाटण भी गये। सोमनाथ का सुप्रसिद्ध मंदिर यहीं है। वह खंडहर बन गया था। सरदार ने उसके स्थान पर नया मंदिर निर्माण करवा कर महादेव की प्राण प्रतिष्ठा कराने का संकल्प किया। इस संकल्प का देश की जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सरदार साहब ने उन लोगों के साथ बड़ी उदारता का व्यवहार किया तो कुछ छिपाया भी नहीं। स्पष्ट शब्दों में (11 अगस्त, 1947) कह दिया, ''मैं उनसे कहता हूं कि 15 तारीख को जो भारतीय संघ में आ गया, वह आ गया, बाद में दूसरी तरह हिसाब होगा। आज जो शर्तें मिलती हैं वे फिर नहीं मिलेंगी। इसलिए राज सम्हालना हो तो अंदर आ जाइये। आज की दुनिया में अकेला रहना मुश्किल है। जब तेज आंधी आती है तो अकेला पेड़ गिर जाता है। मगर जो दूसरे पेड़ों के समूह में होता है वह बच जाता है...

''इस समय हिंदुस्तान को एक करने का मौका है। आज लाहौर से लेकर पूर्व बंगाल का थोड़ा भाग छोड़कर बाकी के हिंदुस्तान को एक करने का मौका एक हजार वर्ष बाद आया है।''

विशाल भारत के निर्माता

स्वतंत्र भारत के सामने समस्याओं का ढेर था। लाखों व्यक्ति बेघरबार होकर पाकिस्तान से आ रहे थे। उन्हें बसाना था। सांप्रदायिक दंगों को शांत करना था। कश्मीर पर पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया था। हैदराबाद अभी संघ से बाहर था। और भी झंझट थे पर भारत के नेता घबराये नहीं। उन्होंने सभी समस्याओं का सामना किया और उन्हें सुलझाया।

उड़ीसा और मध्यभारत में बहुत-से छोटे-छोटे रजवाड़े थे। उड़ीसा के एक रजवाड़े का क्षेत्रफल तो केवल 46 वर्ग मील था। इतने छोटे रजवाड़ों की स्वतंत्रता का क्या अर्थ हो सकता था। उनकी प्रजा भी जाग गयी थी। वह अधिकार मांगती थी। झगड़े होते थे।

उड़ीसा से हैदराबाद की सीमा मिलती थी। उसने अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट की सांठगांठ से इन छोटे-छोटे रजवाड़ों को हड़पने की एक योजना बनायी। बस्तर में लोहे की परतें थीं। उन्हीं को पट्टे पर लेने का निर्णय किया। सरदार साहब को पता लगा तो उन्होंने इस बात का कड़ा विरोध किया। और वहां के नवयुवक राजा को बुलाकर सावधान कर दिया।

लेकिन यही एक समस्या तो नहीं थी। जब तब कोई-न-कोई उलझन सामने आती रहती थी। इसलिए सरदार साहब इस प्रश्न पर बड़ी गंभीरता से सोच रहे थे कि अंत में उन्होंने निर्णय किया कि उड़ीसा के रजवाड़ों को उड़ीसा प्रांत में और मध्यभारत के छत्तीसगढ़ के रजवाड़ों को मध्यभारत में मिला दिया जाय।

वहां की प्रजा तो चाहती ही थी कि वह भी ब्रिटिश भारत की तरह स्वतंत्र हो। राजा भी समझ रहे थे। सरदार साहब ने उनसे बातें करते समय उनके वार्षिक खर्च और उनकी निजी जायदाद के प्रश्न पर भी विचार किया। निश्चय किया कि जिनकी आय एक लाख है उन्हें 15 प्रतिशत, चार लाख की आय वालों को 10 प्रतिशत, पांच लाख से दस लाख वालों को साढ़े सात प्रतिशत भाग दिया जाय। उन्हें कुछ निजी जायदाद रखने का तथा कुछ अन्य अधिकार भी दिये जाने की बात कही गयी। इन्हीं बातों के आधार पर कानून मंत्री ने करार का एक मसविदा तैयार किया।

13 दिसंबर, 1947 को सरदार साहब ने उड़ीसा के छोटे राजाओं की सभा

बुलायी। बड़े प्यार से उन्हें समझाया कि उनके पास ऐसे साधन नहीं हैं जिनके आधार पर स्वतंत्र राज्य टिकते हैं। उनका कल्याण अपने को सब जिम्मेदारियों से मुक्त करने में ही है। ऐसा करेंगे तो भारत सरकार उनके अधिकारों, मान-मरतबों और उनके गौरव को सुरक्षित रखने का वचन देगी।

सत्ता छोड़ना आसान काम नहीं है। (खून मुंह को लगा बुरा होता है) पर सरदार साहब भी ठीक कह रहे थे। राजाओं ने बार-बार सोचा और अंत में मयूरभंज को छोड़कर छोटे-बड़े सभी रजवाड़ों ने विलीनीकरण के करार को स्वीकार कर लिया। मयूरभंज के राजा के होश भी एक वर्ष में ठिकाने आ गये।

सरदार साहब ने इस प्रक्रिया का रोचक वर्णन इस प्रकार किया है–

"मैं अभी उड़ीसा गया था। वहां छोटे-मोटे 28 राजा थे। उनको मैंने समझाया, इन छोटे-छोटे कुओं के कब तक मेंढक बने रहोगे। क्या आप समझते हैं कि आप राजा हैं। मेरा जन्म किसी राजकुटुंब में नहीं हुआ लेकिन आज पूरे देश की हकूमत में मेरा हिस्सा है। आप भी क्यों ऐसा काम नहीं करते? वे सब राजा मेरी बात मान गये और अब आराम की नींद सोते हैं। उनका बोझ मुझ पर आ गया है। वहां से उड़ कर मैं नागपुर आया। यहां भी 18 राजा थे जिन्हें सलामी रियासतें कहते हैं। मैंने भी उन्हें कहा सलाम। जब मैंने उन्हें समझाया तो वे भी समझ गये और उन सबने दस्तखत कर दिये।" गांधी जी ने यह समाचार सुनकर कहा, "राज्यों का विलीनीकरण बदहजमी के शिकार बने बालकों को अरंडी का जुलाब देने जैसा है। ऐसा करने से आखिर में तो राजाओं का ही हित हुआ है।"

अब तो यह क्रम चल पड़ा। सौराष्ट्र में दो सौ से ऊपर छोटे-बड़े रजवाड़े और तालुके थे। वहां भी समस्याएं उठीं। प्रजा ने आंदोलन किया। तब बहुत सोच-विचार कर यह निर्णय किया गया कि इन सबको मिलाकर संयुक्त सौराष्ट्र का एक घटक बनाया जाय। 15 फरवरी, 1948 को सरदार साहब ने इसका उद्घाटन किया। राजप्रमुख हुए जामसाहब और मुख्यमंत्री बने श्री उछंगराय नवलशंकर ढेबर। उस अवसर पर जामसाहब का अभिनंदन करते हुए जवाहरलाल जी ने कहा था, "सौराष्ट्र के भावी उत्कर्ष और प्रगति की दिशा में इस युग का यह सर्वोतम कार्य है।"

कोल्हापुर राज्य बंबई प्रांत के साथ मिल गया। लेकिन बड़ौदा ने स्वतंत्र रहने की जी तोड़ कोशिश की। पर अंत में वहां भी उत्तरदायी शासन स्थापित हुआ। शरारत करने वाले महाराज को गद्दी से उतार कर उनके बेटे को बड़ौदा का राजा बनाया गया।

सरदार अखंड भारत के लिए कितने व्यग्र थे। राजस्थान-यूनियन का उद्घाटन करने 30 मार्च, 1949 को वे जयपुर जा रहे थे। मार्ग में उनके विमान में कुछ दोष पैदा हो गया। चालक होशियार था उसने तुरंत विमान को जयपुर के पास की नदी के किनारे की, रेतीली भूमि पर, उतार लिया। उनके सुरक्षित जयपुर पहुंचने पर जब श्री मेनन भावविभोर हो उनसे लिपट गये तब स्नेहसिक्त स्वर में, पूरे आत्मविश्वास

से, हमारे सरदार बोले, "आप निश्चिंत रहें। मुझे कुछ नहीं होने वाला।"

यानी उन्होंने कहा कि जब तक अखंड भारत की कल्पना पूरा रूप नहीं ले लेती उन्हें कुछ नहीं होगा।

मध्य भारत के राजा पहले ही जुड़ चुके थे। अब राजस्थान भी संघ में आ गया। फिर आये हिमाचल और पंजाब के राजा। 1 जुलाई, 1949 को त्रावणकोर-कोचीन के संयुक्त राज्य की स्थापना हुई। मैसूर के महाराज ने बड़ी प्रसन्नता से अपने राज्य को भारत के साथ मिला दिया था। और राजाओं की तरह उन्होंने अपने प्रिवीपर्स तक की चर्चा भी नहीं की थी पर सरदार कैसे भूल सकते थे। वे रोग शैया पर थे। उन्होंने श्री मेनन को बुलाकर पूछा, "मैसूर के महाराज के निजी पर्स की रकम कितनी तय की?"

श्री मेनन बोले, "अभी तो तय नहीं की है।"

सरदार ने उन्हें तुरंत मैसूर जाने के लिए कहा।

इस प्रकार हैदराबाद को छोड़कर सभी रजवाड़ों का भारत संघ में विलय पूर्ण हुआ। सभी जगह जनता का राज्य स्थापित हुआ।

हैदराबाद की कहानी सुनाने से पूर्व कश्मीर के बारे में कुछ कहना आवश्यक है। सब राज्यों की तरह कश्मीर को भी यह सलाह दी गयी कि वह भारत या पाकिस्तान में से किसी एक के साथ जुड़ जाय। पर वहां के राजा हरिसिंह स्वाधीन राज्य के सपने देख रहे थे। पाकिस्तान को यह अच्छा न लगा। उसने पहले तो उसके प्रदेश से जाने वाली अनाज आदि जरूरी चीजें बंद कर दीं। फिर कबाइलियों को उकसा कर आक्रमण करवा दिया। उन्होंने जो रोंगटे खड़े कर देने वाले अत्याचार वहां किये उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। कश्मीर की सेना भी उनका सामना न कर सकी।

अब महाराज की आंखें खुलीं। उन्होंने भारत सरकार से मदद मांगी। वहां की प्रजा के नेता शेख अब्दुल्ला ने भी ऐसी प्रार्थना की। सरदार साहब ने इस स्थिति का स्वागत किया और यह निश्चय किया कि कश्मीर की मदद अवश्य की जायेगी। पर उससे पूर्व उसे भारत के साथ जुड़ जाना चाहिए।

महाराजा ने तुरंत करार पर हस्ताक्षर कर दिये। भारत सरकार ने भी तुरंत कार्रवाई शुरू कर दी। 27 अक्तूबर, 1947 की सुबह सैकड़ों भारतीय सैनिक श्रीनगर पहुंच चुके थे। आक्रमणकारी उसी दिन से पीछे हटने लगे और शीघ्र ही वहां की स्थिति पर काबू पा लिया गया। शेख अब्दुल्ला ने प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में प्रधानमंत्री का पद पहले ही संभाल लिया था।

फिर भी भारत को यह मामला राष्ट्रसंघ में ले जाना पड़ा। लार्ड माउंटबेटन ने नेहरू जी को यही सलाह दी थी। सरदार इसके विरोधी थे, परंतु परिस्थितियों ने उनका साथ नहीं दिया। आज भी वह अर्थहीन प्रश्न राष्ट्रसंघ की कार्यसूचि पर मौजूद हैं।

हैदराबाद घोषणा कर चुका था कि वह भारत या पाकिस्तान किसी के साथ नहीं जुड़ेगा। वह इन दोनों की तरह तीसरे भाग के रूप में स्वतंत्र रहेगा। परंतु ब्रिटिश सरकार ने इस स्थिति को स्वीकार नहीं किया। फिर भी निजाम दांव-पेंच खेल रहा था। 15 अगस्त, 1947 तक उसने कोई निर्णय नहीं किया। इसके विपरीत स्वतंत्रता समारोह में भाग लेने वाली जनता पर अमानुषिक अत्याचार किये। वहां इत्तेहाद-मुस्लिम नाम की एक संस्था थी। उसका नेता था कासिम रिजवी। पुलिस के साथ मिलकर इसके रजाकारों (स्वयंसेवकों) ने भारत के राष्ट्रध्वज जलाये। इन कर्मों की चर्चा भारत की संविधान सभा में स्वयं प्रधानमंत्री ने की थी पर निजाम ने उनसे एकदम इंकार कर दिया।

उसके बाद न जाने कितने नाटक खेले। पाकिस्तान के दोस्त मीर लायक अली को उसने अपना दीवान बनाया। उसके साथ मिलकर रजाकारों ने अराजकता ही नहीं फैलायी युद्ध के लिए विदेशों से सामग्री मंगाने का भी प्रबंध किया।

सरदार साहब पहले तो देखते रहे पर जब पानी सिर से उतरने लगा तो उन्होंने इस प्रश्न को अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचार्य और प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू से सलाह की और पुलिस कार्रवाई करने का निर्णय किया।

निजाम के होश ठिकाने लगने में कुल 108 घंटे लगे। 17 सितंबर, 1948 को उसकी सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। रजाकार नेता गिरफ्तार कर लिये गये। लायक अली पाकिस्तान भाग गया। अंतिम रूप से 23 नवंबर को निजाम ने एक खास फरमान निकाल कर हैदराबाद राज्य को भारतीय संघ के साथ जोड़ने की घोषणा कर दी।

एक प्रकार एक-एक करके सभी रजवाड़े ताश के पत्तों की तरह ढहते चले गये और भारत की एकता का उनका स्वप्न सत्य हुआ। उन्होंने खंडित भारत के शतशत बिखरे अंगों को जादूगर की तरह एक सुदृढ़ शरीर में परिवर्तित कर दिया। इसकी चर्चा करते हुए नेहरू जी ने संविधान सभा में कहा था, ''छह महीने पहले मैं भी नहीं कह सकता था कि आज सैकड़ों साल पुरानी सामंतशाही उखड़ रही है वह इतनी आसानी से उखड़ जायेगी। इस टेढ़ी और कठिन स्थिति से निपटने के विषय में हम पर मेरे मित्र व सहयोगी उपप्रधानमंत्री (सरदार पटेल) का आभार है। पाकिस्तान बनने के बाद भारत को विशाल भारत बनाने में सरदार पटेल का योगदान इतिहास में सदा स्मरण किया जायेगा।''

सचमुच यह एक ऐसी सफलता है जिसका मूल्य आंकते समय भावी इतिहासकार उनके इस कार्य को स्वतंत्रता प्राप्ति से भी अधिक महत्वपूर्ण मानेंगे। क्योंकि इसने इतिहास के प्रवाह को मोड़ दिया था।

अलवर नरेश ने इस ऐतिहासिक घटना के पांच वर्ष बाद कहा था, ''पहले तो

हम उनसे डरते थे। हमें ऐसा लगता था कि यदि हमारे मन दुखाकर सत्ता के जोर पर हमें सतायेंगे तो लार्ड डलहौजी की नीति से सन् 1857 में जैसा विद्रोह हुआ था वैसा ही विद्रोह भारतीय सरकार के विरुद्ध भारतीय राजा कर देंगे परंतु सरदार साहब ने सत्ता का चक्र नहीं चलाया। उन्होंने तो प्रेम की गंगा हमारे जीवन में बहायी। हमें अपना सच्चा स्वार्थ समझाया। माता और पिता जिस प्रकार अपने बालक को संतुष्ट करते है। उसी तरह उन्होंने हमें संतुष्ट किया।''

अपनी पराजय स्वीकार करते हुए भोपाल के नवाब ने उन्हें लिखा था : जहां तक भारत सरकार के साथ मिल जाने के संबंध में मेरी लड़ाई थी मैंने अपने राज्य की स्वतंत्रता और तटस्थता की रक्षा के लिए अपनी शक्ति व सीमा में हरचंद कोशिश की है, इस तथ्य को मैं आपसे छिपाना नहीं चाहता परंतु मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूं और आशा करता हूं कि अब आप महसूस करेंगे कि मैं आपका उतना ही निष्ठावान व वफादार मित्र हूं जितना पहले प्रखर विरोधी था। मैं अपने दिल में किसी के प्रति बुरी भावना नहीं रखता हूं क्योंकि आपने तथा आपके पक्ष के लोगों ने प्रारंभ से ही मेरे साथ आदरपूर्ण व विवेकपूर्ण व्यवहार किया है। अब मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि देश के विरोधी व विच्छेदकारी तत्वों का दमन करने में आपका व्यवहार दृढ़ व निश्चयात्मक रहेगा और जब तक देशी राज्यों के मित्र के रूप में आपका अनुकूल व्यवहार रहेगा तब तक मैं आपका वफादार और विश्वसनीय मित्र बनकर रहूंगा।

सरदार साहब ने केवल देशी राज्यों की समस्या ही नहीं हल की, एक और समस्या भी सुलझायी। सिविल सर्विस के अंग्रेज अधिकारियों पर भारत के नेताओं को विश्वास नहीं था और अधिकारी समझते थे कि उनके बिना स्वतंत्र भारत के शासकों का काम नहीं चलेगा। उन्होंने यहां रहने के लिए दो शर्तें रखीं। अंग्रेज सरकार की ओर से उन्हें यह अधिकार दिया गया था कि एक निश्चित अवधि के बाद वे सवेतन छुट्टी लेकर इंग्लैंड जा सकते हैं। भारत सरकार उनका यह अधिकार कायम रखे और वे अंग्रेज नागरिकों के रूप में ही भारत में रहेंगे।''

सरदार साहब तो चाहते ही थे कि वे चले जायें। यह सुनहरा अवसर था। उन्होंने कहा कि ये मांगे किसी भी तरह स्वीकार नहीं की जा सकतीं। तब वे अफसर अपने आप ही चले गये।

उनके निजी सचिव श्री वी. शंकर के शब्दों में कहें तो–

सरदार 71 वर्ष के थे, जब वे अंतरिम सरकार में गृह और सूचना व प्रसारणमंत्री के रूप में आये। वे 72 वर्ष के थे, जब उपप्रधानमंत्री पद के कार्यों के साथ-साथ उन्होंने देश के विभाजन की समस्याओं से जूझना शुरू किया और रियासतों का भार भी उन्हें सौंपा गया। उनकी जिंदगी के 73, 74 और 75वें वर्ष देश के भूभाग को एक सूत्र में पिरोने, देश के प्रशासन और संगठन के ताने-बाने को पूरा करने, देश में शांति

स्थापित करने, देश के भविष्य की समृद्धि की नींव रखने और प्रशासनिक, कानूनी तथा आर्थिक व्यवस्था को नया रूप देने और देश के संविधान का गणतंत्रीय आधार पर निर्माण करने में बारी-बारी से बीतते गये। इसी समय वे 500 से ऊपर छुटपुट रियासतों को एक संविधान के अंतर्गत लाने में सफल हुए। इतिहास में शायद ही कोई ऐसी मिसाल मिले जब किसी राजनीतिज्ञ या राष्ट्र-निर्माता को सत्तर वर्ष का होने पर अपने जीवन के आखिरी तीन-चार वर्षों में इतनी बड़ी सफलताएं मिली हों और उसकी जिंदगी महान कार्यों से भरीपूरी रही हो और अगर इसके साथ यह बात भी जोड़ दी जाय कि इन वर्षों में उन्हें हृदय रोग भी घेर चुका था और उनके पेट की बीमारी भी भयंकर हो चली थी तो उनके जीवन के चार वर्षों की चर्चा कर स्तब्ध रह जाना पड़ता है।

लेकिन यह प्रसंग समाप्त करने से पूर्व सरदार के जीवनीकार श्री रावजीभाई पटेल का एक संस्मरण देने का लोभ हम संवरण नहीं कर पा रहे। श्री पटेल लिखते हैं :[1]

''देशी राज्यों का विलीनीकरण हो रहा था। उस अरसे में गुजरात प्रदेश कांग्रेस समिति के मंत्री के नाते मुझे गुजरात में सर्वत्र दौरा करना पड़ता था। उस समय देशी राज्या की प्रजा पूरी तरह जाग्रत हो गई थी। यहां तक कि राज्य की संपत्ति प्रजा की संपत्ति की चिंता करती थी। मैं जहां भी जाता वहां प्रजा के नेता शिकायत करते थे कि फलां बंगला या फलां जायदाद राज्य की थी, परंतु ठाकुर साहब ने या नवाब साहब ने उसे ख़ुद ही पचा लिया है। वह हमें वापस दिलवाइये, ताकि वहां हमारी सार्वजनिक संस्था का कार्यालय रखा जा सके या अच्छा अस्पताल खोला जा सके। ऐसी कुछ शिकायतों की सूची मैंने सरदार साहब को दी और लोगों की मांग भी उन्हें बतायी। उस समय सरदार साहब का उत्तर सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। उस उत्तर में उनके कोमल और उदार हृदय की जो झांकी मुझे मिली तथा राजाओं के प्रति उनकी जो प्रेममय सहानुभूति दिखाई दी उसने मुझे स्तब्ध कर दिया। सरदार ने मुझसे पूछा, ''आप तो किसान के लड़के हैं न?''

मैं बोला, ''जी हां।''

''आपके खेत का एक कोना यदि पास के खेत वाला आपका सगा भाई दबा ले, तो आप क्या करेंगे?''

मैंने उत्तर में कहा, ''ऐसे मौके पर अनेक किसानों द्वारा अपने सगे भाई का खून कर डालने की बातें देखी और जानी गयी हैं।''

मेरा उत्तर सुनकर सरदार मिठास से बोले, ''तो रावजीभाई आप सोचें कि आप तो राजाओं के राज्य पूरे के पूरे ले लेते हैं और उनके हाथों से राज्य करने की वह सत्ता भी ले लेते हैं, जो संपत्ति से भी मनुष्य के लिए अधिक मूल्यवान और अधिक प्रिय होती है। फिर भी वे अपना राज्य और अपनी सत्ता इतनी मिठास के साथ दे रहे

हैं। वे कितने उदार हैं। उनके हृदयों में यदि देशभक्ति और देशप्रेम न हो, तो उनसे राज्य और राज्यसत्ता लेना हमारे लिए कठिन हो जाये। अत: ऐसी छोटी-छोटी बातों में हमें अपनी मिठास छोड़नी नहीं चाहिए। प्रजा को यह बात आप समझायें तो ठीक हो।

"सन् 1949 में सरदार दो-चार दिन बारडोली आश्रम में आकर रहे। उनकी इस यात्रा में मुझे सरदार साहब के साथ रहने का सौभाग्य मिला। दिल्ली से विमान में आकर उन्हें बड़ौदा उतरना था। एक दिन बड़ौदा ठहर कर बारडोली जाने का कार्यक्रम तय हुआ था। मैं बड़ौदा के हवाई अड्डे पर गया था। बड़ौदा के श्रीमंत महाराज प्रतापसिंह ने उनके स्वागत की तैयारी की थी। स्वागत के लिए विशेष शामियाना खड़ा किया गया था और फौजी सलामी भी सरदार को दी जाने वाली थी। विधिवत सरदार साहब का स्वागत हुआ। सलामी दी गयी। उसके बाद महाराजा साहब ने उन्हें विशिष्ट कार में बैठाया और स्वयं कार चलाने लगे। सरकार साहब का मुकाम मकरपुरा महल में रखा गया था। हवाई अड्डे से महल का रास्ता पांच-छ: मील का था। रास्ते के दोनों ओर सरदार के दर्शन करने के लिए लोगों की अपार भीड़ एकत्र हो गयी थी। सारा नगर अनोखे ढंग से सजाया गया था। नगर के मार्ग से प्रेम-दीवाने लोगों के प्रणाम का उत्तर देते देते सरदार प्रसन्न मुद्रा में राज-महल पहुंचे। उन्हें महल में पहुंचाने के बाद महाराजा साहब उनसे विदा हुए। कुछ समय बाद मैं वहां पहुंचा। सरदार साहब बड़े प्रसन्न थे। मुझे देखते ही बोल उठे, "क्यों रावजीभाई, आपको ग्यारह बरस पहले का बड़ौदे का किस्सा याद है न? वही यह बड़ौदा है और वही ये महाराजा हैं।"

मैंने मुस्कुराते हुए कहा, "जी हां, अच्छी तरह याद है। प्रजा परिषद का मंडप जला दिया गया था और आपके प्राणों के लिए भी खतरा पैदा हो गया था। शहर में दो-तीन दिन अशांति फैली रही।"

"तो भगवान की इच्छा इस तरह फलती है। इसमें हमें प्रजा-शक्ति का दर्शन होता है।" 'इतना कह कर सरदार गंभीर हो गये।'

1. हिंदी के सरदार-पृष्ठ 165

हरि सम्हालना जी

सरदार पटेल के कठोर ढांचे में बिस्मार्क जैसी संगठन शक्ति, चाणक्य जैसी राजनीतिज्ञता और एकता के प्रति अब्राहम लिंकन जैसी अटूट निष्ठा समाहित थी। विषय की पकड़ उनकी अद्भुत थी। उनके लिए कोई ऐसी समस्या नहीं थी जिसे वे सुलझा-समझ न सकते हों। वे चट्टान की तरह अडिग रह सकते थे तो अपनी बातों से मुक्त अट्हास भी गुंजा सकते थे।

वह बहुत थोड़े शब्दों का प्रयोग करते थे पर होते थे वे बड़े अर्थगर्भित। कुनैन पर मीठा लगाना उन्हें नहीं आता था। ऐसे व्यक्ति ईमानदार और सत्यप्रिय होते हैं पर उनकी ईमानदारी कठोरता और सत्यप्रियता कड़वाहट की पर्यायवाची बन जाती है।

एक बार लार्ड शैंके ने अपने एक लेख में गांधी जी के बारे में अनर्गल बातें लिख डाली थीं। उसके उत्तर में गांधी जी ने एक लंबा पत्र लिखवाया। उस समय हमारे सरदार पास बैठे थे। बोले, ''इतना लिख रहे हैं। इसकी बजाय यह लिखिये न कि तू सरासर झूठा है।''

वे गांधी जी के अंधभक्त कहे जाते थे परंतु अवसर आने पर उन्होंने गांधी जी से अपने मतभेद को छिपाया नहीं। यहां तक कि उनकी इच्छा के विरुद्ध भारत के बंटवारे को स्वीकार करने से वह नहीं चूके। उन्हें विश्वास हो गया था कि जैसी परिस्थितियां हैं उनमें समस्या का सर्वोत्तम हल यही है। हां, यदि गांधी जी उनसे कहते कि मेरे सिद्धांतों के अनुसार देश का शासन न चला सको तो सरकार से अलग हो जाओ, तो वे एक क्षण भी वहां न रुकते। पर गांधी जी तो उनकी कठिनाइयों को समझते थे, इसलिए विचार भेद होते हुए भी दोनों के प्रेम में कभी कमी नहीं आयी।

उन पर यह दोष लगाया जाता रहा है कि वे हिंदू राष्ट्रवादी थे और मुसलमानों के प्रति सांप्रदायिक दृष्टिकोण रखते थे, लेकिन उन्होंने ही हिंदुओं से कहा था, ''कुछ लोग इस समय गोरक्षा की बात करने लगे हैं। अभी तो बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों की ही रक्षा नहीं होती, तब गोरक्षा की तो बात ही कहां? जिन मुल्कों में गायों की हत्या करने की मनाही नहीं है वहां जैसी हृष्ट-पुष्ट गायें पायी जाती हैं वैसी यहां नहीं पायी जातीं। सचमुच गोरक्षा करनी हो तो गाय को अच्छी तरह पालना सीखिये।''

उन्हें हिंदू-मुस्लिम एकता प्राणों से बढ़कर प्रिय थी। सन् 1941 में जब

अहमदाबाद में दंगे हुए थे तब दर्द भरे दिल से उन्होंने कहा था, ''आपको एकाएक यह क्या सूझा कि आप एक-दूसरे के गले काटने लगे। मुझे दुख इस बात का है कि हमारी आबरू चली गयी। अहमदाबाद शहर के नाम पर कलंक लग गया। कैसे मिटाया जाय इसे। इसे मिटाने का एक ही तरीका है कि हम इस बात की कोशिश करें कि दुबारा इस शहर में ऐसा वातावरण न पैदा हो।'' अब भी उन्होंने अपने ढंग से लाखों मुसलमानों की प्राण रक्षा की थी लेकिन वे यह कहने से भी नहीं डरते थे, ''जिन मुसलमानों को भारत के नागरिक के रूप में रक्षण प्राप्त करके पाकिस्तान के लिए वफादारी रखनी हो वे जरूर पाकिस्तान जा सकते हैं। वहां जाने में ही उनका भला है।''

उनका यही रुख बहुत-से लोगों को खटकता था और वे बार-बार गांधी जी तथा नेहरू जी से शिकायत करते रहते थे। गांधी जी बार-बार इस झूठे प्रचार का विरोध करते थे। कहते थे, ''वल्लभभाई न तो पहले कभी कौमवादी थे न आज हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि वे ऐसा व्यवहार कभी नहीं करेंगे जिससे मुसलमानों के साथ अन्याय हो।''

उन्होंने किया भी नहीं लेकिन उनके और जवाहरलाल जी के बीच जो मतभेद थे वे अधिक ठोस थे। उसका कारण था उनके स्वभाव की असमानता। जवाहरलाल जी भावना प्रधान थे। उनके चिंतन पर पश्चिम का प्रभाव अधिक था। सरदार स्पष्टवादी थे और इस देश की आम जनता की तरह सोचते थे। नेहरू जी इस देश के प्रश्नों पर भी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को ध्यान में रखकर विचार करते थे। सरदार पहले अपने घर की बात सोचते थे। इसलिए दोनों बहुत-सी बातों में एकमत नहीं हो पाते थे।

दोनों अपने देश को, देश की स्वाधीनता को बेहद प्यार करते थे। एक-दूसरे का आदर करना भी उन्हें खूब आता था पर स्वार्थी और ईर्ष्यालु व्यक्ति सदा इस बात का प्रयत्न करते रहते थे कि दोनों के बीच की खाई बढ़ती रहे। एक समय तो स्थिति इतनी जटिल हो गयी कि सरदार मंत्रिमंडल से अलग होने को तैयार हो गये। उन्होंने भरे दिल से गांधी जी को लिखा, ''इन परिस्थितियों में आप मुझे सरकार से अलग हो जाने की इजाजत दें तो, शायद इससे देश का और मेरा भी अधिक कल्याण होगा। अभी मैं जो कार्य जिस ढंग से कर रहा हूं उससे भिन्न ढंग से उसे नहीं कर सकूंगा। यदि मैं दीर्घकाल के अपने साथियों के लिए बोझ बन जाऊं और आपके हृदय की वेदना का कारण बनने पर भी अपने स्थान से चिपटा रहूं, तो इनका अर्थ होगा—और मुझे ऐसा ही लगता है—कि मैं सत्ता की लालसा से अंधा बन गया हूं और इसलिए मैं अपना पद छोड़ना नहीं चाहता। इस असह्य स्थिति से आपको मुझे यथासंभव जल्दी-से-जल्दी मुक्त करना चाहिए।''

लेकिन यह पत्र लिखने के बाद भी बंबई में अपने भाषण में उन्होंने अपनी खरी

भाषा में कहा, "आपने अभी-अभी ये नारे सुने कि मुसलमानों को भारत से मार भगाओ। जो लोग ऐसा कहते हैं, वे क्रोध से पागल हो गये हैं, जो मनुष्य क्रोध के कारण आपा खो देता है वह पागल से भी ज्यादा बुरा है। पागल आदमी को तो सयाना बनाया जा सकता है लेकिन क्रोध से अपना आपा खोने वालों को सयाना कैसे बनाया जाय? वे यह नहीं समझ सकते कि भारत में बचे हुए मुट्ठीभर मुसलमानों को निकाल देने से उन्हें कोई लाभ नहीं होगा। मैं साफ बात कहने वाला आदमी हूं।"

तभी तो गांधी जी ने कहा था, "सरदार का, पं. नेहरू का और मेरा तीनों का दृष्टिकोण एक-सा है। हम सब एक ही ध्येय के लिए काम कर रहे हैं।" उन्होंने 30 जनवरी, 1948 को, जिस दिन उनका बलिदान हुआ, सरदार से स्पष्ट कहा, "मैं इस निश्चित और स्पष्ट निर्णय पर पहुंचा हूं कि कैबिनेट में आप दोनों की सेवाएं अनिवार्य हैं। ऐसे नाजुक समय में दोनों में से एक का भी अलग होना देश के लिए भयंकर सिद्ध होगा।"

यह कहने के कुछ ही मिनटों के बाद वे तो अमर हो गये पर सरदार साहब और नेहरू जी ने उनकी इच्छा को पूरा करने में कोई कसर न उठा रखी। मतभेद फिर भी रहे पर वह उन्हें साथ-साथ देश की भलाई के काम करने से न रोक सके। सरदार साहब बराबर अस्वस्थ रहने लगे थे पर परिश्रम उसी तरह करते थे। जवाहरलाल जी के प्रति उनकी निष्ठा वैसी ही थी। 2 अक्तूबर, 1950 को अपनी मृत्यु से ढाई महीने पूर्व उन्होंने कहा था–

"पं. जवाहरलाल नेहरू हमारे नेता हैं। बापू ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया है। और इसकी घोषणा भी उन्होंने की है। बापू के सारे सैनिकों का फर्ज है कि वे जवाहरलाल जी के आदेश का पूरा पालन करें। जो लोग उनके आदेश का हृदय से पालन नहीं करते वे भगवान के अपराधी हैं। मैं बेवफा सिपाही नहीं हूं। मैं जिस स्थान पर हूं उसके बारे में मुझे कभी विचार भी नहीं आता। मैं तो इतना ही जानता हूं कि उन्होंने मुझे जहां रखा था मैं वहीं हूं।"

इसके बाद कुछ कहने को नहीं रह जाता।

उनका स्वास्थ्य अब और भी गिर गया था। बार-बार हृदय रोग के आक्रमण होने लगे थे। आराम करने वे मसूरी और देहरादून भी गये पर कुछ सुधार नहीं हुआ। डाक्टरों ने सलाह दी कि वे बंबई जाकर पूरी तरह आराम करें।

वे 12 दिसंबर, 1950 को बंबई रवाना हुए अवश्य पर मौत के पदचाप उन्हें स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। जाते समय एक मित्र से उन्होंने कहा था, "अब मेरे जीवन का अंत आ रहा है।"

ऐसी अवस्था में भी जाने से पूर्व उन्होंने अपने विभाग के अधिकारियों से एक घंटा बातें की। उन्हें आवश्यक मार्गदर्शक आदेश दिये। उन्हें विदा करने के लिए हवाई अड्डे पर औरों के अतिरिक्त राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद और प्रधानमंत्री नेहरू भी आये

थे। उस स्नेह से भीगे वातावरण में सरदार साहब के अंतिम शब्द थे, "जवाहरलाल जी के सिर पर बहुत बड़ा बोझ है।"

कौन जानता था कि यह विदा ही अंतिम विदा है। बंबई पहुंचकर उनकी पीड़ा कुछ कम हुई पर वह दीये की अंतिम लौ की तरह थी। दूसरे दिन वे बेचैन हो उठे। उस बेचैनी में भी उनके मुख से यही भजन निकलता था, "मेरी लाज तुम्हारे हाथ हरि सम्हालना जी।"

15 दिसंबर की रात में उन पर फिर हृदय रोग का आक्रमण हुआ। वे मूर्छित हो गये और उसी स्थिति में पंचतत्वों में लीन हो गये।

बिजली की तरह यह समाचार चारों ओर फैल गया। राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और दूसरे अनेक नेता तुरंत बंबई पहुंच गये। अपने साथी की इस अंतिम विदा वेला में शोकाकुल नेहरू जी फूट-फूटकर रो उठे। मतभेदों के बावजूद सरदार से उन्हें सबसे अधिक शक्ति मिलती थी। उन्होंने कहा था, "संकट और विजय के क्षणों में हम उनकी मजबूत आवाज सुनते थे। वह ऐसे मित्र और सहयोगी थे जिन पर पूरा भरोसा किया जा सकता था। वह ऐसे शक्ति स्तंभ थे जिससे दुर्बल हृदय भी मजबूत हो जाते थे।"

उनकी अंतिम यात्रा उन्हीं के अनुरूप थी। रामधुन और भजन गाते हुए पांच लाख देशवासी उनकी पार्थिव देह का अंतिम संस्कार करने श्मशान पहुंचे थे। उस समय लाखों कंठों से निकली इस पवित्र धुन 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम' से वातावरण गूंज उठा था।

न जन्म होता है, न मृत्यु होती है, आत्मा सत्य की उच्चतर अवस्थाओं को खोजती रहती है। लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल का जीवन कठोर कर्म द्वारा, इसी सत्य की खोज में, शाश्वत यात्रा का ज्वलंत उदाहरण है। इन जैसों के लिए ही कवि ने गाया है:–

फटे हुए माता के आंचल को सीनेवाले,
तुझे बधाई है ओ पागल मरकर जीनेवाले।

अनुक्रमणिका

अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति 7, 15

बहिष्कार आंदोलन 15

अंग्रेजों, भारत छोड़ो' 43

अंतरिम सरकार 45

अंतिम यात्रा 60

अदालत 10

अनुशासन 19

अनोखी सूझबूझ 11

अब्दुल्ला, शेख 52

अब्राहम, लिंकन 57

अभियुक्त के संबंध में 3

अलवर नरेश 53

अली, मीर लायक 53

असहयोग आंदोलन 15, 18

अस्पृश्यों के लिए अलग निर्वाचन मंडल का एवार्ड 35

अहमदनगर का किला 44

अहमदाबाद का तूफान *(1927)* 3

अहमदाबाद में बैरिस्टर 13

अहमदाबाद म्युनिसिपल कमेटी 15

आंदोलन, 1942 का 44

आगा खां महल 44

आजाद, मौलाना अबुल कलाम 32, 39

आजाद हिंद फौज 44

आणंद तालुका 5

आर्थिक कार्यक्रम 30

इंग्लैंड रवाना, बैरिस्टर बनने 6, 22

इंदौर 5

इंदौर-नरेश 5

इत्तेहाद-मुस्लिम 53

इर्विन, लार्ड 17, 30

उड़ीसा रजवाड़ा 50

उपप्रधानमंत्री 47

उपमन्यु की तरह कर्तव्य पालन 4

एकीकरण करार 48

कटाक्षमय विनोद 32

कटु-व्यंग्यकार 33

करबंदी आंदोलन, गुजरात में 29

करमसद 5, 7

कराची कांग्रेस अधिवेशन *(1931)* 30

कश्मीर 52

कहावतों का भंडार 34

कांग्रेस की स्वर्ण जयंती 36

किशोरावस्था 1, 2

किसानों की सभा 19

केंद्रीय विधानसभा में कांग्रेस 36

कैदी झवेरभाई 5

कोल्हापुर राज्य 51

क्रिप्स, सर स्टैफर्ड 42

क्लास से निकलना 2

खराब स्वास्थ्य 43, 44
खरे, डा. 37
खुदाई खिदमतगार 30
खेर, बाल गंगाधर 37

गांधी-इरविन पैक्ट 30
गांधी, कस्तूरबा 15, 44
"गांधी की रचनात्मक गफलतें" 34
गांधीजी के मुख्य सहायक 14
गांधीजी के साथ कारागार में 30-32
गांधीजी से मतभेद 40
गांधी, राष्ट्रपिता महात्मा मोहनदास कर्मचंद 5, 6, 14, 15, 17, 18, 20, 21-46, 57, 58, 59
गिरफ्तार *(1930)* 29, 44
गुजरात में बाढ़ *(1927)* 17
गुजरात राजनीतिक परिषद *(1917)* 14
गुजरात विद्यापीठ 35
गुजरात सभा का सदस्य 14
गुलाब राजा, डाकू 9-10
    कानूनी सलाह 10
गैर कानूनी शराब बनानेवाले का वकील 9
गोधरा में प्लेग 6
गोरैल गांव 16
गोलमेज परिषद 35
ग्वायर, मॉरिस 39

चर्चिल, प्रधानमंत्री 42
चाणक्य 57
चौरीचौरा कांड 15, 18

छत्तीसगढ़ रजवाड़ा 50
छोटालाल 7

जनता के मूलभूत अधिकार 30
जनसेवा में जुड़ना 15
जन्म 5, 6
जयकर 29
जवाहरलालजी के प्रति निष्ठा 59
जहरीला फोडा 2
जहांगीर, सर कावसजी 36, 37
जापान की आंख भारत पर 44
जामसाहब 51
जिन्ना 45, 47, 48, 49
जीवन-चित्र 1-4
जूनागढ़ 48, 49
जेल से रिहा 29, 30

झंडा सत्याग्रह, नागपुर में 15, 16
टाइम्स आफ इंडिया 19

ठाकुर, रवीन्द्रनाथ 35
ठाकुर साहब 38

डलहौजी, लार्ड 54
डांडी कूच 28, 29
डाह्याभाई 22, 23
डिस्ट्रिक्ट प्लीडर की परीक्षा 8

ढ़ेबर, उछंगराय नवलशंकर 51
ढ़ेबरभाई 38

तीन महीने की कैद *(1930)* 29
त्रावणकोर-कोचीन संयुक्त राज्य 52
त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन *(1939)* 39

दिल्ली कांग्रेस महासमिति की बैठक 36
दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस 30
देशमुख, डा. 36
देसाई, गोपालदास 38
देसाई, महादेव 25, 26, 30, 31, 33, 34, 35, 44

धरती में गड़े खूंटे उखाड़ना 2

नडियाद 6, 7
नमक कर रद्द करने की शर्त 28
नमक-सत्याग्रह 28, 29
  प्रथम भाषण 28, 29
नरम दल 30
नहरुआ का आपरेशन 6
नागपुर झंडा सत्याग्रह 15, 16
नरीमान, के. एफ. 36, 37
नासिक जेल 35
नेहरू, पं. जवाहरलाल 28, 30, 39, 41, 45, 47, 51, 52, 53, 58, 59, 60
नेहरू, पं. मोतीलाल 29
नौ महीने की सजा *(1930)* 30
नौसैनिक विद्रोह 45

पट्टाभि सीतारमैया, डा. 39
  झवेरभाई,
  1857 के विद्रोह में 5
  इंदौर में गिरफ्तार 5
  भक्ति 5
  सम्मान सहित कैद से मुक्त 5
पटेल, डा. भास्कर 36
पटेल, विट्ठलभाई 6, 11, 13, 17, 22
पटेल, रावजीभाई 55-56
पत्नी की मृत्यु पर प्रतिक्रिया 3
परिवार 22
पहली गोलमेज कांफ्रेंस 28, 30
पार्लमेंटरी बोर्ड के अध्यक्ष 36
पिता से संबंध 24-25
पुत्र के नाम पत्र 23-24
पुत्री के नाम पत्र 24
पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा 28
पेटलाद 7
पैर में दर्द 6
पोलैंड 40
प्रत्युत्पन्नमति 32
प्रभास पाटण 49
प्रसाद, डा. राजेंद्र 39, 59, 60
प्रांतवाद का विष 37
प्रांतीय विधानसभाओं का चुनाव 36, 37

फेडरल राज्य-शासन 28
फ्रांस 40

बजाज, सेठ जमनालाल 15
बड़े भाई का देहांत 35
बड़े भाई के नाम पत्र 24
बड़ौदा 7
बहादुरजी, *बैरिस्टर* 37
बापू की भक्ति 30-32
बाबर देवा 16
बारडोली आंदोलन 18
बारडोली का सरदार 21
बारडोली में गांधीजी 20
बारडोली समझौता 30
बिस्मार्क 57
बीजगणित का प्रश्न हल करना 1
बेगार संबंधी प्रस्ताव 14
बोरसद में प्लेग 16, 36

बोल्शेविज्म 19
बोस, सुभाषचंद्र 38, 39, 44

भावे, विनोबा 41
भुट्टो, शाहनवाज 49
भोपाल नवाब 54

मजदूर दल 45
मणिबेन 22, 23
महावीर त्यागी 23
मां से संबंध 25-27
माउंटबेटन, *लार्ड* 46, 47, 52
माता का देहांत 35
माता-पिता का प्रभाव 6
माल विभाग 18
मालवीय, *पं०* मदनमोहन 36
मुंडकर आंदोलन 16, 17
मुंशी, कन्हैयालाल 19-20, 37
मुंसिफ को धमकी 10
मुस्लिम लीग 45
मृत्यु 59
मेनन, वी.पी. 48, 51
मेहता, *सर* चुन्नीलाल 20
म्यूनिसिपल कमेटी के अध्यक्ष 3

यरवडा जेल 29

राजकोट आंदोलन 38
राजगोपालाचार्य 53
राजनीतिक दांवपेंच 33
राजस्थान-यूनियन 51
रामकृष्ण, परमहंस 15
रामगढ़ कांग्रेस अधिवेशन 41
रामास्वामी, *सर* सी.पी. 48

रिविजन सेटलमेंट *(1928)* 18
रिहाई 29, 30, 45
रेलवे के थानेदार का वकील 11

लाड़बाई 6
लारेंस, *लार्ड* पैथिक 45
लूथर, महात्मा 3
लेनिन 19
लोकप्रियता,
वकील में 9

वकालत से त्याग 15
वकील 3
वात्सल-हृदय 23
वालोड की सभा 19
वासुदेव कृष्ण 5
विजय गर्व 2
विद्रोह, 1857 का 5
विधुर जीवन 22
विलायत जाने की इच्छा,
बैरिस्टर बनने 12-13
बिलिंग्डन, लार्ड 30
विलीनीकरण करार 51
विवेकानंद 15
विश्वयुद्ध 44
वीरबाला 38
वुड, *कलेक्टर* 9
व्यक्तिगत सत्याग्रह 41

शंकर, वी. 54
शांति निकेतन 35
शिक्षा 7
शैंके, *लार्ड* 57

संयुक्त सौराष्ट्र 51
सत्याग्रह 14
    आंदोलन 15, 19
    आरंभ 16
    पहला पाठ 8
    संग्राम 36
सप्रू, तेजबहादुर 29
'सरदार' 4
सरदार की उपाधि 18, 21
सरस्वती, महर्षि स्वामी दयानंद 5, 33
सांप्रदायिक दंगा 41-42, 45, 50
साइमन कमीशन 28
साबरमती जेल 41
सार्वजनिक जीवन का आरंभ 14
सिविल सर्विस 54
सोमनाथ 49
स्कूल में सजा 7
स्वराज पार्टी 15
स्वाधीनता संग्राम 28
स्वामी नारायण संप्रदाय 5

हत्या का षड्यंत्र 39
हरिपुरा कांग्रेस 38
हरिसिंह, राजा 52
हाई स्कूल में भरती 7
हास्यवृत्ति 33
हिंदू-मुस्लिम एकता 57
हिटलर 40
हिटलर का विरोध 41
हैदराबाद निजाम 48, 53